(वंश-संचालन की समस्या पर आधृत
ग्राम्य जीवन-सम्बन्धी सामाजिक उपन्यास)

लेखिका
उर्मिला कुमारी, एम० ए०

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
नई सड़क, दिल्ली

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार,
नई सड़क, दिल्ली

मूल्य तीन रुपये बारह आने
अथवा
'तीन सौ पिचहत्तर नये पैसे'
प्रथम संस्करण

मुद्रक
न्यू एशियन प्रिन्टर्स
चाँदनी चौक, दिल्ली

दो शब्द

भारतीय परिवारों में पुत्र-जन्म को विशेष महत्व दिया जाता रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखिका ने इसी प्राचीन विश्वास को लेकर पुत्र-जन्म न होने पर परिवार में व्याप्त हो जाने वाली निराशा का चित्रण किया है। उपन्यास के अन्त में मृत श्यामलाल की विधवा पत्नी लक्ष्मी द्वारा पाठशाला की स्थापना कराकर इस समस्या का समाधान उपस्थित किया गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत उपन्यास सामाजिकता की आधार-पीठिका पर स्थित रहा है। इसमें वर्णित कथावस्तु को उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित रखा गया है। लेखिका को ग्राम-जीवन का चित्रण करने में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

हिन्दी के गद्य-साहित्य के विकास में आधुनिक युग में कथा-साहित्य ने सर्वाधिक योग दिया है। इस दृष्टि से उपन्यास-साहित्य की रचना की ओर सर्वाधिक ध्यान दिया गया है। महिला-लेखिकाएँ भी इस दिशा में पर्याप्त जागरूक रही हैं। इस दृष्टि से सुश्री कंचनलता सबरवाल, उषादेवी मित्रा तथा रजनी पनिकर ने प्रर्याप्त प्रशंसनीय उपन्यासों की रचना की है। हिन्दी की महिला उपन्यासकारों ने प्रायः पारिवारिक समस्याओं के विवेचन की ओर ही विशेष ध्यान दिया है। वंश-वल्लरी में भी हमें भारतीय गृहस्थ के पारिवारिक जीवन की सुन्दर चर्चा मिलती है। इस उपन्यास की मुख्य विशेषता यही है कि इसमें जीवन की स्वाभाविकता को उभारने का प्रयास किया गया है। इस दिशा में लेखिका ने विभिन्न पात्रों के वार्तालापों को सहजता पर आधारित रखने की ओर मुख्य ध्यान दिया है।

उपन्यास की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि उसमें वास्तविकता को उपयुक्त प्रश्रय प्रदान किया जाए। कथानक में कृत्रिमता आ जाने से उपन्यास के सारभूत प्रभाव में पर्याप्त शिथिलता आ जाती है। वंश-वल्लरी का अध्ययन करने पर मैंने इस तत्व का इसमें उपयुक्त निर्वाह पाया है। इस कृति में मानव-जीवन को निकट से देखने का प्रयास किया गया है और मानवीय प्रवृत्तियों—स्नेह, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि—का सहजतम उल्लेख किया गया है। उपन्यास की प्रतिपादन शैली भी सर्वत्र सरल और जन-साधारण के लिए बोधगम्य रही है।

भारतीय समाज का मुख्य अंश ग्रामों से ही सम्बन्धित है। अतः आधुनिक कथा-साहित्य में ग्राम-जीवन को उचित प्रतिनिधत्व प्राप्त होना चाहिए। मैं इस तथ्य पर सदा से ही विशेष बल देता आया हूँ और मेरे उत्तरवर्ती उपन्यास—इन्साफ, झुनिया की शादी, बन्नलती रातें इत्यादि—ग्राम-जीवन से ही सम्बन्धित रहे हैं। प्रस्तुत उपन्यास में ग्राम-जीवन के एक अंग-विशेष को स्पष्ट करने का प्रयास देख कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। इस कृति में वैश्यों और जाटों के विद्वेष की समस्या को उठा कर अन्त में विद्वेष को सारहीन दिखाया गया है। आधुनिक युग की साम्प्रदायिकता-विहीन स्थिति में यह भावना निश्चय ही प्रशंसनीय है।

मुझे विश्वास हैं कि प्रस्तुत उपन्यास का हिन्दी-जगत् में विशेष आदर होगा। लेखिका के साथ मेरी शुभकामनाएँ हैं।

मालीवाड़ा—दिल्ली,
१—३—५७

—यज्ञदत्त शर्मा

एक

बात उन दिनों की है जब भारत का विभाजन नहीं हुआ था और गाँवों में ज़मींदारी प्रथा पूर्णतः प्रचलित थी। एक ओर ज़मींदार कृषकों को जमीन बटाई पर दे कर प्रतिवर्ष उनसे लगान वसूल करता था और दूसरी ओर उन्हें विवाह आदि उत्सवों पर कर्ज देकर महाजन की भाँति सूद सहित मूल वसूल करता रहता था। कृषक बेचारे जीवन भर कर्ज के बोझ से दबे निर्धनता की चक्की में पिसते रहते थे, किन्तु इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी तो नहीं था। ज़मींदार उनके लिए एक राजा के समान था और प्रजा की भांति वे उसकी आज्ञा के पालन में रत रहते थे। ज़मींदार का क्या भरोसा, कभी भी किसी बात पर क्रुद्ध हो सकता है। अतः वे सदैव उसके भय से कांपते रहते थे और ईश्वर से यही प्रार्थना करते थे कि ज़मींदार का कृपा-भाव उनके तथा उनके परिवार पर सदा बना रहे।

उत्तर प्रदेश में हरिपुर नामक एक ग्राम है। प्रकृति देवी की उस पर अपार कृपा है। यही कारण है कि वहां के खेतों में सदैव हरियाली ही हरियाली दृष्टिगत होती है। कहते हैं कि सावन के अन्धे को सदैव हरा ही हरा दिखाई देता है, किन्तु हम यह निर्विवाद कह सकते हैं कि हरिपुर के अन्धे चाहे किसी भी मास में अन्धे हुए हों, उन्हें सदैव हरा ही दीखता होगा। हम जिस समय की घटना का उल्लेख कर रहे हैं, उस समय हरिपुर में अधिकांश घर जाटों के थे। शेष में से कुछ नाई, धोबी, भंगी आदि निम्न वर्ग के व्यक्तियों के थे और बहुत कम घर ब्राह्मण, वैश्य आदि उच्च कहलाने वाली जातियों के थे।

इन तथाकथित उच्च जातिवालों में लाला वंशीधर का विशेष सम्मान था। यद्यपि वह जाति के वैश्य थे, तथापि ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था। जाट लोग उनसे भय खाते थे और नीच जातियों के लोग उन्हें किसी राजा से कम नहीं समझते थे। वास्तव में उनके इस आदर और धाक के दो कारण थे। एक तो उनका रोबदार व्यक्तित्व और दूसरा उनकी जमीन तथा जायदाद का प्रभूत विस्तार, उनके स्वस्थ भरे हुए शरीर, छः फुट लम्बे कद, रोबदार चेहरे, बड़ी-बड़ी मूंछों और कड़कती हुई आवाज को देख-सुनकर जाट भय खाते थे तब श्रद्धालु लोग श्रद्धा से नत हो जाते थे, उनका बाहरी व्यक्तित्व जितना कठोर था, उतना ही उनका हृदय उदार था। उनकी कृपा के पात्र नीच जाति के लोग सदैव उनका गुणगान करते थे। उनसे पचास-साठ रुपए उधार लेकर कितने ही हरिजनों ने रहटियाँ चालू कर दी थीं और प्रति वर्ष उन्हें दो रुपए सूद के तौर पर देते रहते थे। एक बार एक हरिजन ने भरे बाजार में उनसे कहा—"दाता हम तो तुम्हारे ही भाग्य से जीवित हैं। यदि तुम न होते तो आज हम भी इस धरती पर इस रूप में न होते।"

सब के सम्मुख अपनी दानशीलता की यह प्रशंसा सुन कर लाला वंशीधर गौरवपूर्ण ढंग से मुस्कराए। उसी समय उस हरिजन ने अवसर पाकर कहा—"बाबा जी! आज मिठाई खाने को बड़ा मन चाहता है। यदि थोड़ी-सी खिला दें तो बड़ी कृपा हो।"

लाला जी की मुस्कराहट हंसी की खिलखिलाह में बदल गई। वह समझ गए कि मिठाई से जग्गू का क्या तात्पर्य है। वह अनेक बार अपनी दुकान के सम्मुख याचना करने वाले भिखारियों, हरिजनों और यहां तक कि कभी-कभी कुछ जाट आसामियों को भी इस प्रकार की मिठाई खिलाते रहते थे। इस समय वैसे भी जग्गू ने उनकी भरे बाजार में प्रशंसा की थी। अतः उनका मन अत्यन्त प्रसन्न था। वह तुरन्त दुकान भीतर गए और एक पूरी भेली गुड़ की लाकर जग्गू को देते हुए

बोले—"लो बेटा, जितना मन करे उतनी खाओ।"

जग्गू का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। आशीर्वाद-सा देता हुआ बोला—"जुग जुग जिओ दाता।" अन्य दर्शकों को भी अपनी ओर प्रशंसा की दृष्टि से देखते हुए देखकर लाला जी का मन दुगना हो गया।

लाला जी के चार लड़के थे, वे भी उन्हीं की भाँति रोबपूर्ण व्यक्तित्व रखते थे, किन्तु पिता की भाँति दानशीलता में उनकी विशेष श्रद्धा नहीं थी। उनमें से केवल श्यामलाल ही उन से सहमत था। उसके अन्य भाइयों को पिता की यह आदत खटकती थी। लाला जी सनातन धर्म में अखण्ड विश्वास रखते थे। वह साधु महात्माओं का विशेष सम्मान करते थे। आये दिन किसी न किसी साधु का उनके घर पर भोजन होता था। उनके पुत्र यह सब देखकर कुढ़ते रहते थे। उनके विचार में उन अकर्मण्य साधुओं को इस प्रकार भोजन कराना धन लुटाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं था, किन्तु क्या करते; पिता से भय खाते थे। खुल कर विरोध करने का साहस उनमें नहीं था। पिता की आज्ञा की अवज्ञा वे नहीं कर सकते थे। हाँ, पिता की अनुपस्थिति में वे जब-तब साधुओं को दुत्कार देते थे। लाला जी को अपने पुत्रों की इस मनोभावना का ज्ञान न हो, यह बात नहीं थी। वह सब कुछ जानते थे और मन ही मन उनकी नादानी पर मुस्कराया करते थे। उनके पुत्र भी उनकी भाँति दानशील बनें, ऐसी उनकी कोई विशेष इच्छा नहीं थी। इसी कारण उन्होंने अपने पुत्रों के विरुद्ध की गई साधु-महात्माओं की शिकायतों को सुन कर भी उस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। फिर भी वह उन्हें समय-समय पर इस प्रकार समझाते रहते थे—"बेटो, दुनिया में आकर मनुष्य को केवल अपनी ही चिन्ता से सन्तोष नहीं कर लेना चाहिये। उसे थोड़ा-बहुत ध्यान परमार्थ की ओर भी देना चाहिए जिससे उसे इहलोक तथा परलोक दोनों में सुख प्राप्त हो।"

उनका यह उपदेश चिकने घड़े पर पानी की बूंद के समान अधिक

नहीं ठहरता था। हाँ, श्यामलाल, जो सब से चतुर था, अपने पिता के उपदेश को आदर की दृष्टि से देखता था और उसे हृदयंगम कर लेता था।

लाला वंशीधर ने अपनी सारी ज़मीन जाट आसामियों को बटाई पर दी हुई थी। वह और उनके लड़के पंसारी की दुकान करते थे। दुकान पर उनका कार्य केवल यही था कि जाकर बैठ जाएं, क्योंकि दुकान के कार्यों के लिए तो नौकर वर्तमान रहते ही थे। वास्तव में दुकान पर जाना उनके लिए एक मन-बहलाव का साधन था। विस्तृत ज़मीन का लगान ही उनके पास इतना आता था कि हजारों रुपए साल की आमदनी थी।

इसके अतिरिक्त आसामी लोग भेंट आदि भी आए दिन लाते ही रहते थे। बड़े मकान के नीचे की मंज़िल सदैव अन्न से भरपूर रहती थी। एक मकान में उनका लड़कों और पोते-पोतियों का विशाल परिवार समा नहीं सकता था। इस कारण उन्होंने प्रत्येक लड़के को रहने के लिए एक-एक मकान दे रखा था। उनकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी थी। अ: वह स्वयं बारी-बारी से सब के पास रहते थे, किन्तु ज़मीन-जायदाद अभी सम्मिलित ही थी।

जाट लोग लाला जी और उनके लड़कों से थर-थर काँपते थे। लड़कों को तो वे काले सर्पों के समान समझते थे और लाला जी को उनका भी बाप! वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। लाला जी का बल असीमित था। उनके लड़के युवक होते हुए भी अपने वृद्ध पिता की इस व्यावहारिक शक्ति से पूर्णतः परिचित थे। इसी कारण कई बार मन से विरोध करते हुए भी वे उनकी आज्ञा का पालन करते थे। गाँव में जाटों की संख्या अधिक थी, इसलिए वे चाहते थे कि गाँव में उनका राज्य हो और अन्य सभी जातियाँ उनकी आज्ञा का पालन करती रहें। लाला जी के परिवार ने और सब से अधिक स्वयं लाला जी ने उनकी इस आशा पर पानी फेर दिया था। अब वे ही एक तरह उन वैश्यों के दासों की भाँति

जीवन व्यतीत कर रहे थे। यह बात चौधरी मंगूराम को सब से अधिक खटकती थी। एक बार उन्होंने सब जाटों को एकत्रित कर कहा—"भाइयो ! हमारी जाति सदा अन्य जातियों पर शासन करती आई है। यह हमारे लिए डूब मरने की बात है कि हम वैश्य जाति के चन्द बिच्छुओं से भय खाकर उनकी आधीनता में अपना जीवन व्यतीत करते रहें। शेर होकर क्या तुम गीदड़ की भांति रहना चाहोगे?"

सब जाटों ने असम्मतिसूचक सिर हिलाया, किन्तु लाला जी का ध्यान आते ही सब के मुख पीले पड़ गए। चौधरी इसे पहचान गए और धैर्य बंधाते हुए बोले—"मैं जानता हूं कि तुम उस दो कौड़ी के लाला से भय खाते हो। अरे मूर्खो ! जरा सोचो तो सही कि पतली दाल को खाने वाले उस वृद्ध लाला में कितनी शक्ति होगी। तुम वास्तविकता से दूर हो। उनका शरीर बादी से फूला हुआ है और तुम उसे बलशाली समझे बैठे हो। क्या हम चार-पांच आदमी मिलकर भी उस एक का मुकाबला नहीं कर सकते? घबराओ मत, मैं भी तुम्हारे साथ हूं।"

इतने पर भी जाटों का भय विशेष कम नहीं हुआ, किन्तु चौधरी के बहुत अधिक समझाने-बुझाने पर उनके सुप्त साहस तथा शौर्य ने अंगड़ाई ली और वे लाला जी का विरोध करने के लिए कमर कस कर तैयार हो गए। जाटों ने चौधरी के उपदेशानुसार सब के सामने अपनी जाति की कसम खाकर प्रण किया कि भविष्य में कभी लाला जी की आधीनता स्वीकार नहीं करेंगे। यदि वह उन से लगान मांगेंगे तो वे स्पष्ट इनकार कर देंगे और भेंट-पूजा देने का तो कभी नाम भी न लेंगे। इस पर यदि लाला जी और उनके पुत्र क्रुद्ध होकर लड़ाई झगड़ा करेंगे तो वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देंगे। अपने जाति-भाइयों की यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर चौधरी का सीना एक गज का हो गया।

लाला जी को भी किसी गुप्त रीति से चौधरी के घर पर हुई जाटों की इस पंचायत का पता लग गया। उन्होंने अपने लड़कों को भी

उसका ज्ञान कराया और उनसे उचित परामर्श देने के लिए कहा। लड़कों को अपनी संगठित शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। वास्तव में अपने संगठन के बल पर ही वे अब तक जाटों पर शासन करते आ रहे थे। एक बार उनके संगठन की सुदृढ़ता का ज्ञान हरिपुर के थानेदार को भी हो चुका था और वह उसे कभी नहीं भूल सकता था। बात वास्तव में इस प्रकार हुई कि एक बार जमींदारी आदि की सामान्य बातों को लेकर सब भाइयों में बहस चल रही थी। धीरे-धीरे बात इतनी बढ़ी कि गालियों तक पहुंच गई और अन्त में मारपीट की नौतब भी आ पहुंची। बड़े भाई ने क्रुद्ध होकर अपनी बात का विरोध करने वाले छोटे भाई के सिर में पास रक्खी पंसेरी उठा कर मारी। आघात काफी जोर का था। अतः तुरन्त सिर से खून बहने लगा। यह देख कर सब सन्न रह गए। बड़े भाई का क्रोध भी तुरन्त शान्त हो गया। उसे अपने किये पर मन ही मन घोर पश्चात्ताप हुआ। उसने तुरन्त अपनी धोती के एक छोर से कपड़ा फाड़ कर पानी में भिगो कर छोटे भाई के सिर में पट्टी बाँधी। इतने में यह समाचार पुलिस को प्राप्त हो गया। अपराधी को पकड़ने के लिए थानेदार दो सिपाहियों सहित आ धमका, किन्तु इसके पूर्व कि वह अपना कार्य करता, छोटे भाई ने कड़क कर कहा—"खबरदार जो मेरे भाई को हथकड़ियाँ पहनाईं। उन्होंने मेरे सिर में पंसेरी मारी है और किसी के तो नहीं। उन्हें अपने भाइयों के साथ सब कुछ करने का अधिकार है। जब मुझे उन से इस विषय में कोई शिकायत ही नहीं तो तुम किस आधार पर उन्हें पकड़ना चाहते हो।"

यह सुनकर थानेदार खिसया गया और मन ही मन झुंझलाता हुआ लौट गया। इस पर सब भाई एक दूसरे को देख कर मुस्करा दिए। अब भी उन्हें अपनी संगठित शक्ति पर पूरा भरोसा था। उन्होंने आपस में मिलकर जाटों वाली समस्या का समाधान करने का विचार

किया, किन्तु एक कठिनाई थी। उनमें से श्यामलाल जायदाद के किसी काम से बागपत गया हुआ था। उसके बिना किसी अन्तिम निर्णय पर पहुंचना उन पांचों के लिए असम्भव था, क्योंकि जैसा कि पहले कहा गया है, वह सब से अधिक चतुर था। यदि अन्य भाइयों को शरीर के विभिन्न अंग मान कर श्यामलाल को उनका मस्तिष्क कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। उसकी युक्तियों में सब को अखण्ड विश्वास था।

इस विश्वास के मूल में भी एक रहस्य था। गत वर्ष जब ओड़ नामक जाति के कुछ लोग हरिपुर में आए थे तब केवल श्यामलाल की युक्ति के कारण ही उनकी जान बची थी। अन्यथा वे अब तक कभी के मर चुके होते। ओड़ एक जंगली जाति है, जो सुना जाता है, क्रुद्ध होने पर आदमियों को कच्चा ही चबा जाती है। उन दिनों इस जाति के कुछ कबीले हरिपुर में अपने मोतियों का व्यापार करने की इच्छा से आये हुए थे। उन्होंने गाँव से दूर जंगल में अपना डेरा जमाया और दो ओड़ मोतियों के लिए उपयुक्त ग्राहकों की खोज में गाँव में आए। गाँव के लोगों ने उन्हें बताया कि केवल लाला जी ही इतने धनी थे कि उनके मोती खरीद सकें। यह जान कर वे लाला जी की दुकान पर आए। संयोग से लाला जी उन दिनों किसी कार्यवश गांव से बाहर गए हुए थे। उनका बड़ा लड़का मणिलाल उस समय दुकान पर बैठा था। उन दोनों ने उसे दो सच्चे मोती दिखाए और कहा—"हमारे पास ऐसे अनेक मोती बोरियों में भरे रखे हैं। तुम हमारे साथ हमारे डेरे पर चलो तो हम तुम्हें वे सभी पाँच रुपये सेर के हिसाब से अत्यन्त सस्ते दामों पर दे देंगे।"

मणिलाल ने हाथ में लेकर परखा और देखा कि मोती निश्चय ही सच्चे थे। एक-एक मोती एक-एक हजार रुपये को भी सस्ता था। फिर सेर भर में तो हज़ारों मोती चढ़ेंगे। उसे ओड़ों की मूर्खता पर मन में बड़ी

हंसी आई, किन्तु ऊपर से उसने ऐसा कोई भाव प्रकट नहीं होने दिया और उसने कहा—"तुम जरा दुकान पर ठहरो, मैं तब तक घर जाकर अपने भाइयों की सलाह ले आऊं, फिर हम दो या तीन भाई मिल कर तुम्हारे साथ चलेंगे, क्योंकि मैं अकेला तो उतने मोती उठाकर ला नहीं सकूंगा जितने हमें खरीदने हैं।"

ओड़ों ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया और उन के मुख पर एक कुटिलतापूर्ण मुस्कराहट फैल गई। मणिलाल ने यह देख लिया, किन्तु वह इसका अर्थ न समझ सका। उसने सब भाइयों के घर जाकर वे मोती दिखाए और सारी घटना का वर्णन किया। घनश्याम और राधे-श्याम उन्हें देख कर उन जैसे असंख्य मोतियों को इतने सस्ते मूल्य पर पाने की आशा से अत्यन्त प्रसन्न हुए और तुरन्त जाने के लिए तैयार हो गए। जब वे सब मिलकर श्यामलाल के घर पहुंचे तब वह भोजन कर रहा था। उसने आदि से अन्त तक सारी बातें सुनीं, मोती परखे और उसका माथा ठनक गया। उसे ओड़ों की बातों में सन्देह की स्पष्ट झलक मिल रही थी। आखिर वे ऐसे मूर्ख कैसे हो सकते थे कि इस प्रकार पानी की भाँति सच्चे मोतियों को लुटाने के लिए भी ग्राहक खोजते फिरें। जब वह भोजन समाप्त कर हाथ-मुंह धोकर आया तो मणिलाल ने ओड़ों की कुटिलतापूर्ण मुस्कराहट की बात बतलाई जो अभी तक किसी को नहीं बतलाई थी। उसको सुनकर श्यामलाल का सन्देह और भी दृढ़ हो गया। उसने कहा—"भाइयो! मुझे तो दाल में कुछ काला दिखाई देता है। क्या तुम ओड़ों को इतना मूर्ख मानते हो कि वे इतने सस्ते दामों पर मोती बेचने के लिए दर-दर मारे-मारे फिरेंगे। क्या दुनियाँ में ग्राहकों का अभाव है जो उन के इतने सच्चे और इतने सस्ते मोती घर बैठे नहीं बिक सकते।"

मणिलाल मोतियों का अच्छा पारखी था। उसने देख लिया था कि मोती बिल्कुल सच्चे हैं। अतः श्यामलाल का यह सन्देह उसे

निर्मूल प्रतीत हुआ और वह तनिक झुंझला कर बोला—"श्यामलाल ! क्या तुम मोतियों की मुझ से अधिक पहचान रखते हो जो इस प्रकार सन्देह कर रहे हो ? तुम यही न कहना चाहते हो कि ये दोनों मोती झूठे हैं। क्या तुम मुझे मूर्ख समझते हो ? क्या अब मैं सच्चे-झूठे मोतियों को भी नहीं पहचान सकता ?"

श्यामलाल का तात्पर्य वह नहीं था जो मणिलाल ने लगाया। उसने नम्रतापूर्वक कहा—"नहीं भाई साहब ! आपके पितृ-तुल्य ज्ञान में मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। मुझे भी थोड़ा-बहुत मोतियों को परखने का ज्ञान है। उसके बल पर मैं आपका समर्थन करता हुआ यही कहूंगा कि ये दोनों मोती बिल्कुल सच्चे हैं, किन्तु अन्य मोती जो बोरियां में भरे हुए हैं और जो हमें खरीदने हैं उनके सच्चे होने पर मुझे पूरा सन्देह है।"

यह सुन कर सभी श्यामलाल की बुद्धि के कायल हो गए। अब उन के समक्ष भी ओड़ों की कुटिल मुस्कराहट का रहस्य कुछ-कुछ स्पष्ट हो रहा था, किन्तु किसी न किसी निर्णय पर तो आखिर पहुंचना ही था। अन्त में मणिलाल ने ही श्यामलाल से पूछा—"आखिर तुम क्या करने को कहते हो ? क्या उन्हें साफ जवाब दे दिया जाए कि हमें नहीं खरीदने हैं ?"

श्यामलाल ने उत्तर दिया—"नहीं, यह ठीक नहीं होगा, क्योंकि आप पहले उन्हें खरीदने का वचन दे चुके हैं। अब अस्वीकार करेंगे तो कोई कारण भी बताना पड़ेगा जो हमारे पास नहीं है। फिर केवल सन्देह को ही विश्वास मान कर अस्वीकार कर देना भी ठीक नहीं है। पहले हमें मोती देख लेने चाहिए। यदि बाकी मोती भी इन दोनों जैसे सच्चे हों तो खरीदने में हमारी क्या हानि है, बल्कि लाभ ही लाभ है। इसके विपरीत यदि हमारे सन्देह के अनुसार वे झूठे हों तो हमें

ऐसा कार्य करना चाहिए कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे अर्थात् हमें मोती खरीदने भी न पड़ें और ओड़ हमारे शत्रु भी न बनें।"

सब ने उत्सुकतापूर्वक एक स्वर से कहा—"वह कैसे ?"

श्यामलाल ने कुछ देर तक सोच कर उत्तर दिया—"वह ऐसे कि हम में से कोई दो भाई पहले इन ओड़ों के साथ जाएं। बड़े भाई उनके साथ ज़रूर जाएं क्योंकि उन्हें मोतियों की पूरी परख है। वहाँ जाकर मोती देखें। सच्चे हों या झूठे, वे उन्हें तुलवा कर एक ओर रखवा लें, जिस से ओड़ों को कोई सन्देह न हो। पीछे से मैं और घनश्याम आयंगे। यदि मोती सच्चे हों तो राधेश्याम ओड़ों की दृष्टि बचा कर मुझे दाईं आँख दबा कर संकेत कर दे। इसके विपरीत यदि वे झूठे हों तो वह बाईं आँख दबा कर संकेत करे। यदि मोती सच्चे हुए तो हम सब मिलकर उन्हें उठा लायेंगे। यदि वे झूठे हुए तो जैसा मैं उस समय कहूं, तुम सब उसी के अनुसार कार्य करना।"

सब ने श्यामलाल की युक्ति का स्वागत किया। तदनुसार मणिलाल और राधेश्याम ओड़ों के साथ उनके डेरे पर गए। मार्ग में ओड़ों ने उन से वे दो मोती ले लिए। डेरे पर जाकर जब उन दोनों ने बोरियों में भरे हुए चार आने सेर के झूठे मोती देखे तो वे सन्न रह गए। मणिलाल को इस प्रकार धोखा देने वाले ओड़ों पर काफी क्रोध भी आया, किन्तु उन्होंने ऊपर से प्रसन्नता से भाव बनाए रखा और दो मन मोती तुलवा कर एक ओर रखवा लिए। ओड़ों की प्रसन्नता का क्या ठिकाना ? आज उन्हें बिना परिश्रम किए हुए ही गहरा लाभ हो रहा था। मणिलाल ने ओड़ों को बताया कि जल्दी में वे रुपए साथ नहीं ला पाए थे और अपने दोनों छोटे भाइयों को रुपए लेकर आने का आदेश दे आये थे। अतः उनके आते ही वे उनके रुपए देकर मोती उठा ले जायं। इतने में सामने से श्यामलाल और घनश्याम आते

दिखाई पड़े। अभी वे कुछ दूर ही थे कि राधेश्याम ने बाईं आँख का संकेत कर दिया। यह देख कर श्लामलाल ने घनश्याम को जल्दी से कुछ समझाया। जब दोनों समीप आए तो अत्यन्त घबराए हुए थे। श्यामलाल ने घबराहट से भर्राई हुई आवाज़ में कहा—"भाइयो जल्दी चलो, बिन्दू नौकर ने बीड़ी पीकर भूल से अनाज के गोदाम में फेंक दी, आग लग रही है। देर हुई तो सारा अनाज जल जायगा और हमें भूखों मरना पड़ेगा। हम दोनों से अकेले कुछ नहीं हो सकता। इसीलिए हम यहां भागे हुए चले आ रहे हैं। मोती तुलवा कर रख लिए हों तो ठीक है, कल-परसों तक आकर ले जायंगे।"

श्यामलाल ने ये बातें इतनी घबराहट भरी स्वाभाविकता से कहीं और घनश्याम के मुख की घबराहट इतनी वास्तविक प्रतीत हो रही थी कि ओड़ों को कोई सन्देह नहीं हुआ और सब भाई सकुशल घर लौट आए। यदि उन्होंने वास्तविक कारण बता कर मोती खरीदने से इनकार किया होता तो ओड़ उन्हें कच्चा ही चबा गए होते। गाँव में आकर उन्होंने सब को ओड़ों के धोखे की बात बतला दी जिससे और किसी को प्राण से हाथ न धोने पड़ें।

जब पाँच-छः दिन तक वे मोती लेने नहीं गए तो ओड़ उनकी चाल समझ गए। वे जान गए कि उनका छल पकड़ा गया है और अब उस गाँव में ग्राहक खोजना व्यर्थ है, क्योंकि गांव में जाते ही सब मिल कर उन्हें मार-मार कर अधमरा कर देंगे। अत: वे अपना डेरा-डण्डा उठाकर कहीं और चले गए।

जाटों की वर्तमान समस्या ओड़ों की भूतकालीन समस्या से कुछ कम थी। वहाँ प्राणों का सन्देह था तो यहां सम्मान पर आँच आती थी। सम्मान का महत्व प्राणों से किसी प्रकार भी कम नहीं है। पाँचों भाइयों ने मिल कर श्यामलाल को शीघ्र ही बुलाने

का विचार किया। उसे तार दे दिया गया, और वह शीघ्र ही आ गया। जब उसे सारी स्थिति से अवगत कराया गया तब उसने कहा—

"हमें अपनी ओर से कोई भी ऐसा कदम नहीं उठाना चाहिए जिससे अन्त में लेने के देने पड़ जाएं। पिता जी को मिला हुआ यह समाचार सत्य हो सकता है, किन्तु जब तक आसामियों के लगान देने का समय नहीं आ जाएगा तब तक हम इसका कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सकेंगे। यदि हम केवल इस समाचार को ही आधार मान कर जाटों से लड़ाई-झगड़ा करेंगे तो अन्त में उनका पलड़ा ही भारी रहेगा और स्पष्ट प्रमाण के अभाव में पुलिस हमें पकड़ कर जेल में डाल देगी। इस प्रकार सम्मान के बदले हमारा अपमान ही होगा जो हम में से किसी को भी सह्य नहीं है। अतः हमें चाहिए कि कुछ महीने धैर्य धारण करें। समय आने पर सब कुछ देखा जाएगा। यदि आवश्यकता हुई तो मार-पीट से भी हम पीछे नहीं हटेंगे।"

सब ने श्यामलाल की दूरदर्शिता और बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मणिलाल ने अपने प्रिय तथा चतुर छोटे भाई को कण्ठ से लगा लिया और कहा—"श्यामलाल! निश्चय ही तुम ने बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता की बात कही है। आयु में तुम से बड़ा होने पर भी बुद्धि में मैं तुम से बहुत छोटा हूं। आज से मैं तुम्हें अपना गुरु मानता हूं।"

यह सुन कर श्यामलाल को अतिशय लज्जा का अनुभव हुआ। वह बोला—"भाई साहब! मैं आप से छोटा हूं और छोटा ही रहूंगा। जो कुछ मेरी अल्प बुद्धि है वह सब आप सब की कृपा का प्रसाद है। आप ऐसी बातें कह कर मुझे व्यर्थ कांटों में न घसीटिए।"

मणिलाल कोई उत्तर देने ही वाला था कि इतने में बिन्दू ने आकर कहा कि उन सब को लाला जी ने बुलाया है। यह सुनकर मणिलाल, राधेश्याम और घनश्याम को कोई भूली हुई बात याद आ गई। तीनों

के मन में उस समय एक ही भावना थी। उसे व्यक्त करते हुए राधेश्याम ने श्यामलाल से कहा—"अरे हम तो भूल ही गए, पिता जी से हम ने आज प्रातःकाल मिलने का वायदा किया था। चार दिन हुए जब उन्होंने हम से इस विषय में परामर्श देने के लिए कहा था। उस समय तुम्हारे अभाव में हम किसी निर्णय पर नहीं पहुंचना चाहते थे। हमें विश्वास था कि कल तुम्हें हमारा तार मिल चुका होगा और आज प्रातः तुम अवश्य आ जाओगे, किन्तु तुम अब दोपहर को आ पाए हो। हम निर्णय कर भी चुके, किन्तु भावावेश में लीन होकर यह ध्यान ही नहीं रहा कि पिता जी को शीघ्रातिशीघ्र उत्तर देना है। चलो, अब चारों मिल कर चलें और उन्हे भी अपनी योजना से अवगत कराएं।"

लाला जी अपने पुत्रों की दूरदर्शी योजना को सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। वस्तुतः वह स्वयं भी जल्दी करने के पक्ष में न थे, किन्तु जानना चाहते थे कि पुत्रों की इस विषय में क्या राय है। अपने पुत्रों को भी अपने ही समान व्यवहार-बुद्धि-कुशल जान कर लाला जी को अपार सन्तोष हुआ।

जब दो महीने हो चुके और इस बीच लगान देने का समय आकर जा चुका। तब सब को उस समाचार की सत्यता में कोई सन्देह नहीं रहा। पहले समय से एक दिन पूर्व ही सब आसामी आकर लगान स्वयं दे जाते थे, किन्तु इस बार कोई नहीं आया। अन्त में हार कर लाला जी ने अपने पटवारी को लगान लेने भेजा। सब ने एक ही रटा हुआ उत्तर दिया कि वे लाला जी के आधीन नहीं हैं और अब वे कभी लगान नहीं देंगे। यहाँ तक कि मंगू चौधरी के मुंह लगे हरिराम जाट ने, जो अपनी उद्दण्डता के लिए प्रसिद्ध था, लगान मांगने पर पटवारी के मुंह पर एक चाँटा रसीद किया और बोला—'आज तो एक चाँटा लगा कर ही क्षमा कर रहा हूं, किन्तु यदि भविष्य में फिर कभी इस ओर रुख किया तो सिर फोड़ कर रख दूंगा। यह ज़मीन हमारे बाप-दादों

की है। लाला जी ने बेईमानी से अपने नाम लिखवाली तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम उनके सब अन्याय चुपचाप सहन कर लेंगे। आखिर हम कोई काठ के पुतले नहीं हैं जो विवश भाव से आयु भर उनकी आज्ञा का पालन करते रहेंगे। यह मुंह और मसूर की दाल ! आए लगान माँगने वाले !"

पटवारी को क्रोध तो बहुत आया, किन्तु विवश था। पास ही में दो-तीन जाट और भी खड़े थे तथा हरिराम की उपयुक्त बातें सुन-सुन कर मुस्करा रहे थे। वह समझ गया कि इस समय यदि उसने क्रोध प्रकट किया तो मामला उसी के हक में बुरा होगा। अतः वह चुपचाप वहाँ से चला आया और नमक-मिर्च लगा कर लाला जी से अपने अपमान की बात कह सुनाई। सुनते ही लाला जी का मुख क्रोध से तमतमा गया। पटवारी उनका प्रतिनिधि बन कर गया था। अतः उसका अपमान स्वयं उनका अपमान था। उनके लड़के भी अत्यन्त क्रुद्ध हुए और सब लाठियाँ ले कर हरिराम के घर की ओर दौड़ पड़े। पीछे-पीछे उनके बहुत-से हट्टे-कट्टे नौकर और कुछ अन्य समर्थक भी उनकी रक्षा के लिए लाठियाँ लेकर चल दिये।

हरिराम इस स्थिति के लिए पहले से ही तैयार था। उसने तब तक सब जाटों को सूचना देकर बुला लिया था। सब लाठियों सहित वहाँ उपस्थित थे। केवल मंगू चौधरी न आ सके थे। वास्तव में उन्हें लाला जी से बहुत काम पड़ता था, अतः जब तक उनका सितारा बुलन्द था, तब तक वह उनके शत्रु नहीं बनना चाहते थे। वैसे मन में उन्हें लाला जी से अत्यन्त घृणा थी, फिर भी उनके व्यावहारिक ज्ञान ने उन्हें वहाँ जाने से रोक लिया और भयंकर सिर-दर्द का बहाना कर वह चारपाई पर पड़े रहे। अधिकांश जाट चौधरी की यह चाल समझ गए थे। उनके मन भी डावांडोल होने लगे थे, किन्तु फिर भी अब तो परिस्थिति बिगड़ ही चुकी थी। उन्हें किसी न किसी प्रकार अपने प्रण

का निर्वाह करना ही था।

ज्यों ही लाला जी और उनके पुत्र आदि हरिराम के खेत पर पहुंचे त्यों ही उसने गाली देते हुए प्रहार करने प्रारम्भ कर दिए। अन्य जाटों ने भी उसका साथ दिया। लाला जी और उनके पुत्रों ने डट कर सामना किया। काफी देर तक लड़ाई चली। बहुत से जाटों के सिर फूटे। राधेश्याम और घनश्याम के सिरों पर भी गहरी चोटें आईं, किन्तु वे इस ओर कुछ भी ध्यान न देकर पूर्वत लड़ते रहे। हरिराम लाला जी का सिर फोड़ना चाहता था, किन्तु उनके पुत्रों ने अब तक उसका मौका नहीं दिया था। अन्त में उसने मौका निकाल ही लिया। जब मणिलाल और राधेश्याम आदि अन्य जाटों से जूझ रहे थे तब उसने अपनी इच्छा पूरी करने के लिए जोर से हवा में लाठी तानी और लाला जी के सिर पर मारने ही वाला था कि लाला जी का स्वमीभक्त नौकर बिन्दू उसकी मनोभावना को ताड़ गया। उसने लाला जी के सिर पेर अपने दोनों हाथ रख दिए। लाठी का वार उसके दायें हाथ पर लगा और वह हाथ सदा के लिए बेकार हो गया। तब तक लाला जी संभल चुके थे। उन्हें अत्यन्त क्रोध आया और उनके पक्ष वालों ने और भी प्रबल वेग से प्रहार करने प्रारम्भ किए। जाट घबरा कर मैदान छोड़ने वाले ही थे कि इतने में पुलिस ने आकर स्थिति संभाल ली।

थानेदार लाला जी से समय-समय पर रिश्वत, भेंट आदि प्राप्त करता रहता था। अत: वह उन्हीं के पक्ष में था और फिर अपराध भी स्पष्टत: जाटों का ही था। पहल उन्हीं की ओर से हुई थी। कुछ निष्पक्ष विश्वस्त गवाहों ने जब सच्ची घटना पुलिस को बतलाई तो स्पष्टतः जाट, उनमें भी सब से अधिक हरिराम ही अपराधी ठहरते थे। हरिराम को दो महिने के सपरिश्रम कारावास का दण्ड मिला और अन्य जाटों को उचित व्यवहार करने की चेतावनी दे कर छोड़ दिया गया। उस दिन से लाला जी का रौब और भी बढ़ गया। यह ठीक है कि

उनके पुत्रों को गहरी चोटें लगी थीं और वह भी काफी घायल हो गए थे, किन्तु अन्त में बाजी उन्हीं के हाथ में रही थी। उनकी धाक फिर जम गई। लाला जी का विश्वास था कि भला वही होता है जिसका अन्त भला हो।

उस दिन के बाद जाट लाला जी से इतना भय खाने लगे कि यदि स्वप्न में भी उन्हें लाला जी की रौद्र-मूर्ति के दर्शन हो जाते थे तो उन्हें पसीने छूटने लगते थे। एक बार लाला जी के सामने उनके एक जाट मित्र ने इस भावना को मज़ाक-मज़ाक में प्रकट भी कर दिया था। एक दिन प्रातःकाल जब वह दुकान पर बैठे हुए थे तब वह कुछ सौदा लेने के लिए आया। शायद देर से सोने के कारण उसके नेत्र लाल हो रहे थे और चेहरा भी उतरा हुआ लग रहा था। लाला जी ने सौदा तुलने पर मज़ाक करते हुए कहा—"मित्र! मालूम होता है कि तुम आजकल रात भर भाभी को सोने नहीं देते हो। तभी तुम्हारी आखें इतनी लाल हैं और रात्रि-जागरण के कारण चेहरा भी उतरा हुआ है।

मोहनलाल ने भी मज़ाक का उत्तर देते हुए कहा—"भाई! क्या बताएं, भाभी तो तुम्हारी गत सप्ताह से ही मैके गई हुई है। वास्तव में तुम्हारे भय के कारण रात भर सो नहीं पाते। यदि स्वप्न में भी तुम्हारे रौद्र रूप के दर्शन हो जाते हैं तो कलेजा कांप उठता है।"

यद्यपि बात मज़ाक में कही गई थी किन्तु लाला जी जानते थे कि इस में पूरी सत्यता थी। उन्होंने गर्व से मुस्कराते हुए कहा—"घबराओ नहीं दोस्त अभी तो मैं कम से कम दस वर्ष और जीवित रह कर तुम्हें सोने नहीं दूंगा।"

विधि के विधान को कौन टाल सकता था। उपर्युक्त घटना के कुछ दिन बाद ही गांव में महामारी फैली, जिसमें गाँव के अधिकांश लोग रोग की भेंट चढ़ गए। लाला जी और उनके दो पुत्र भी उस में चल बसे। केवल श्यामलाल और राधेश्याम ही शेष रहे। जाटों को लाला जी के

मरने से बड़ी प्रसन्नता हुई। यद्यपि रोग के आधनक फैल जाने से गाँव का कोई भी घर उसके प्रभाव से अछूता नहीं बचा था और अधिकांश घरों में किसी न किसी सम्बन्धी के मरने से शोक छाया हुआ था, तथापि लाला जी की मृत्यु के समाचार ने उनके दुखते हुए घावों के लिए मरहम का काम किया। लाला-परिवार के तीन व्यक्तियों की मृत्यु से उनके हाथ मज़बूत हो गए। ऊपर से श्यामलाल और राधेश्याम के सामने सब ने शोक प्रकट किया, किन्तु शाम को ही मंगू चौधरी के यहाँ एक गुप्त बैठक हुई। उसमें सब ने दिल खोल कर अपने मन की बातें कहीं और लौटने पर अपने-अपने घरों में घी के दीपक जलाए।

दो

लाला जी की मृत्यु के उपरान्त सम्पत्ति के बँटवारे का प्रश्न श्याम-लाल के सामने आया। वैसे दोनों बड़े भाइयों की मृत्यु हो जाने के कारण वही परिवार का मुखिया था और सम्पत्ति का विभाजन न होने में उसी का लाभ था, क्योंकि सम्पत्ति पर पहला अधिकार उसी का था। यदि जायदाद सम्मिलित रहती तो घनश्याम और बड़े भाइयों के पुत्रों को उसके आधीन रहना पड़ता और बड़प्पन का यह लोभ प्रायः सभी को होता है, किन्तु श्यामलाल दूरदर्शी था। उसे अपने ऊपर विश्वास था कि वह कभी छोटे भाई को और बड़े भाइयों के बच्चों को धोखा नहीं देगा ; किन्तु वह जानता था कि औरों के अविश्वास पर वह कोई प्रति-बन्ध नहीं लगा सकेगा।

श्यामलाल को अपने छोटे भाई पर तो पूर्ण विश्वास था कि वह उसे कभी बेईमान नहीं समझेगा, किन्तु भाइयों के बच्चों के विषय में वह कुछ नहीं कह सकता था। अभी तो उनकी दृष्टि शुद्ध थी, किन्तु कुछ समय बाद यदि लोगों के बहकाने से वे उसे अविश्वास की दृष्टि से देखने लगें और मन ही मन उसे धोखेबाज़ समझने लगें तो वह स्थिति उसके लिए असह्य हो जायगी। यदि किसी ने प्रत्यक्ष या परोक्ष में मुँह से उसे बेईमान कह दिया तो ऐसे जीवन की अपेक्षा वह निश्चय ही मृत्यु को अधिक श्रेयस्कर समझेगा। इन सब स्थितियों से बचने का

सर्वोत्तम उपाय यही था कि वह पहले ही सारी चल तथा अचल सम्पत्ति को चार समान भागों में विभक्त कर दें। इससे परिवार के किसी भी सदस्य को किसी भी प्रकार की शिकायत का अवसर मिलने की सम्भावना ही नहीं थी।

इसके अतिरिक्त श्यामलाल को सम्पत्ति का बँटवारा होने से एक और भी लाभ दिखाई दिया। यदि कल को गाँव में पहले जैसी महामारी के समान कोई अन्य बीमारी फैल जाए और उसका छोटा भाई भी एकाएक चल बसे तो पीछे से बच्चे सम्पत्ति के बँटवारे के लिए लड़ेंगे, परस्पर फूट पैदा होगी और अन्त में संगठन के अभाव में सब सम्पत्ति जाटों के अधिकार में चली जाएगी। उस अवस्था में उसके भावी वंशज शनैः-शनैः निर्धनों की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिए विवश हो जायँगे। इस प्रकार उसके पिता ने जिस धन और मान को बल और कौशल से कठिनता से अर्जित किया है, वह सहज ही लुप्त हो जायगा। यह स्थिति और भी अधिक भयावह थी।

इस प्रकार जब श्यामलाल ने अपनी दूरदर्शी दृष्टि से सम्पत्ति-विभाजन की स्थिति पर प्रत्येक पहलू से विचार किया तब उसे उसमें अपेक्षाकृत अधिक लाभ दिखाई दिए। अब प्रश्न यह था कि घनश्याम से यह बात किस प्रकार कही जाय। भाइयों के बच्चों की ओर से उसे किसी प्रकार के विरोध की शंका नहीं थी। उसकी अनुभवी आँखों ने पहचान लिया था कि वे उसकी योजना को सहर्ष स्वीकार करेंगे, किन्तु भ्रातृ-भक्त घनश्याम के लिए क्या किया जाए? वह तो निश्चय ही इस बात का प्रबल विरोध करेगा। फिर भी सम्पत्ति का बँटवारा तो कभी न कभी करना ही था और श्यामलाल चाहता था कि इस शुभ कार्य को शीघ्र ही कर डाला जाए जिससे किसी प्रकार के मनोमालिन्य का अवसर न आए। अतः उसने उसी दिन सन्ध्या के समय घनश्याम के घर जाने का निश्चय किया।

घनश्याम अपने भाई श्यामलाल को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखता था। जब उसके अन्य भाई भी जीवित थे तब भी उसके हृदय में अपने इस चतुर, दूरदर्शी तथा अपार स्नेही भाई के लिए अत्यधिक सम्मान था। फिर अब तो बात ही और थी। पिता तथा बड़े भाइयों के अभाव में केवल श्यामलाल ही ऐसा था जिसका आदर-सम्मान करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य था। उसके इस सम्मान के मूल में कर्त्तव्य-भावना की अपेक्षा प्रेम-भावना ही अधिक थी। वास्तव में स्नेह से परिपूर्ण हृदय वाले भाई की उपस्थिति में पिता और बड़े भाइयों का अभाव घनश्याम को अधिक नहीं खलने पाया था।

घनश्याम को अपने बड़े भाई की बड़ी चिन्ता रहती थी। पिता और भाइयों के मरने के बाद इतनी बड़ी जायदाद को सँभालने का सारा बोझ उन्हीं के कन्धों पर आ पड़ा था। सब से छोटा होने के कारण घनश्याम को पहले व्यापार की तनिक भी चिन्ता नहीं थी। सारा काम पिता और तीनों भाई मिलकर कर लेते थे। वह तो चिन्ता-मुक्त जीवन व्यतीत करता था। उसका विवाह हुए अभी दो ही वर्ष हुए थे, कोई बच्चा भी नहीं था। अतः वह प्रत्येक प्रकार की चिन्ता से मुक्त था। अब सब परिस्थितियों के बदल जाने से वह इस प्रकार की मुक्ति से मुक्त होना चाहता था। उसने सोचा आखिर भाई साहब अकेले क्या-क्या कर लेंगे, छोटा भाई होने के नाते उनका हाथ बँटाना उसका परम कर्तव्य है। अभी पिता तथा भाइयों को मरे हुए केवल दो ही महीने हुए थे। अतः शोक-ग्रस्त होने के कारण उसने चाहते हुए भी श्यामलाल से इस बिषय में कोई बात नहीं की थी। वैसे जाता वह उसके यहाँ प्रायः रोज ही था, किन्तु भाई के शोक-ग्रस्त मुख की ओर देख कर उसे मन की बात मन में ही रख लेनी पड़ती थी। आज उसने निश्चय किया कि वह सन्ध्या के समय भाई के घर जाकर उन्हें घुमाने के लिए ले जाएगा और मार्ग में जब उन्हें कुछ प्रसन्न देखेगा तभी अपनी बात कह देगा।

उधर श्यामलाल ने भी बँटवारे की बात कहने के लिए उस दिन सन्ध्या का समय ही निश्चित किया था। यद्यपि घनश्याम प्रतिदिन ही उसके घर जाता था, किन्तु श्यामलाल अपने मन की बातें एकान्त में ही कहना चाहता था। घर पर बातें करने से पास-पड़ोस वालों को भी पता लग सकता था। श्यामलाल चाहता था कि जब तक सम्पत्ति के बँटवारे की बात सब-ओर से पक्की न हो जाए तब तक किसी अन्य को उसके विषय में कुछ भी पता नहीं लगना चाहिए। इसलिए घनश्याम की भाँति उसने भी यही सोचा कि वह घनश्याम को घुमाने ले जायगा और मार्ग में एकान्त देख कर अपने मन की बात से उसे अवगत कराएगा। यह सोच कर सन्ध्या होने पर वह घनश्याम के घर की ओर चल पड़ा। मार्ग में उसे घनश्याम मिला जो उसी के घर की ओर जा रहा था। यह देख कर उसे प्रसन्नता हुई और उसने गद्गद् स्वर में कहा—"घनश्याम! तुम्हारी आयु बहुत लम्बी है। मैं अभी-अभी तुम्हें याद करता हुआ तुम से मिलने आ रहा था और तुम मार्ग में ही मिल गए। चलो तनिक अपने खेतों की ओर घूमने चलें।"

घनश्याम तो स्वयं यही चाहता था। भाई को प्रसन्न देख कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। शुभचिन्तक होने के कारण वह सदैव भाई को प्रसन्न देखना चाहता था। फिर आज तो उसे अपने मन की इच्छा भी प्रकट करनी थी जो प्रसन्नता की स्थिति में कही जाने पर अधिक फलदायिनी हो सकती थी। इसलिए वह प्रसन्नचित हो कर भाई के साथ अपने खेतों की ओर चल पड़ा।

मार्ग में दोनों में से किसी ने भी अपनी बात न कही। इधर-उधर की बातें करते हुए वे खेतों तक जा पहुँचे। किसान हल खोल कर जा चुके थे। अतः वहाँ पूर्ण एकान्त था। दोनों ने सोचा कि मन की बातें कहने का स्वर्णावसर उपस्थित है। श्यामलाल का कार्य

ज़रा कठिन था। अतः वह अपनी बात कहने के लिए उपयुक्त भूमिका खोज रहा था। इतने में ही घनश्याम ने कहा—"भैया! मैं आज आपसे एक बात कहना चाहता हूँ।"

श्यामलाल मन की बात को मन में ही दबा कर उत्सुकतापूर्वक बोला—"हाँ, हाँ! क्यों नहीं, अवश्य कहो।"

घनश्याम ने कहा—"बात यह है भैया कि अब मैं पहले की बेफिक्री से छुटकारा चाहता हूँ। अकेले आप के कन्धों पर सारा बोझ आ पड़ा, यह ठीक नहीं है। आखिर मैं किस लिए हूँ। क्या मैं आपका कुछ हाथ नहीं बँटा सकता? मुझे पता है कि आप भ्रातृ-स्नेह के कारण मुझ से कुछ करने को नहीं कहेंगे, किन्तु आखिर मेरा भी तो कुछ कर्त्तव्य है।"

छोटे भाई की अपने प्रति असीम श्रद्धा एवं स्नेह को देख कर श्यामलाल का हृदय गद्गद् हो गया। उसे उसकी उपयुक्त बातें सुन कर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हुआ। जिन बातों को कहने के लिये वह इतनी देर से मन ही मन में भूमिका बाँध रहा था, उसे घनश्याम ने स्वयं उपस्थित कर उसकी बहुत बड़ी कठिनाई हल कर दी थी। उसने प्रसन्नतापूर्ण मुस्कराहट से कहा—

"मुझे गर्व है घनश्याम कि मुझे इतना स्नेहशील तथा कर्त्तव्य-परायण छोटा भाई मिला। मेरा विचार है कि मैं पूर्व जन्म में कोई बहुत बड़ा पुण्यात्मा रहा होऊँगा। यह सौभाग्य प्रत्येक को प्राप्त नहीं होता। आजकल तो भाई एक-दूसरे से ईर्ष्या रखने वाले और एक-दूसरे के खून से अपनी प्यास बुझाने को ही अपना परम कर्त्तव्य समझने वाले होते हैं, किन्तु तुम............।"

घनश्याम ने उसकी बातों का अन्त न होते देख कर उसे बीच में ही रोक कर कहा—"बस भैया! मुझे अधिक लज्जित न करो। आज तक

निष्क्रिय बैठ कर खाता रहा और आज जब कुछ काम करने की इच्छा प्रकट की तब आप लगे मेरी प्रशंसा के पुल बाँधने ?"

"तुम निष्क्रिय बैठे रहे ? यह तुम ने खूब सोचा। हम सब बड़े भाइयों तथा पिता जी की आज्ञाओं का पालन करने में सदा लीन रह कर भी तुम आज अपने को निष्क्रिय कह रहे हो ! चलो, तुम्हारी बात ही सही। तुम आज तक निष्क्रिय रहे, किन्तु अब तो काम करना चाहते हो। सुबह का भूला यदि शाम को घर लौट आए तो उसे भूला हुआ नहीं कहा जाता। क्यों ? अब तो मैं तुम्हारी ठीक प्रशंसा कर रहा हूँ न ?" श्यामलाल ने व्यंग्यात्मक स्नेह से कहा।

"तो फिर भैया आज ही मुझे चल कर सब काम समझा दो और कल से मैं आपकी भरसक सहायता किया करूँगा। यद्यपि आपके जितना कार्य तो मुझ से नहीं हो पायेगा, किन्तु फिर भी कुछ न कुछ सहायता तो आपको मिल ही सकेगी।" घनश्याम ने प्रसन्नतापूर्वक कहा।

उसकी प्रसन्नता को लक्षित करते हुए श्यामलाल ने कहा—"देखता हूँ कि तुम काम करने के लिए अत्यन्त उतावले हो रहे हो। बहुत अच्छी बात है। यद्यपि मुँह से तुमने अपने इन विचारों को मेरे सम्मुख आज ही प्रकट किया है, किन्तु तुम्हारे हृदय की इन गुप्त भावनाओं को मैं बहुत पहले से ही पहचान रहा था और इसीलिए बहुत दिनों तक सोचने के पश्चात् आज प्रात:काल मैंने एक निश्चय किया है।"

"वह क्या ?" घनश्याम की उत्सुकता इस समय चरमसीमा पर थी।

"वह यह कि मैं यह चाहता हूँ कि न केवल तुम, अपितु बड़े भैया के पुत्र धर्मचन्द्र और राधे भैया के पुत्र सतीशचन्द्र भी मेरे साथ जमीन तथा जायदाद के काम की देख-भाल किया करें।"

इस प्रकार श्यामलाल ने घुमा-फिराकर अपने वास्तविक तात्पर्य को प्रकट कर दिया, किन्तु घनश्याम इसको सामान्य रूप में ही लेकर प्रसन्न भाव से बोला—"यह आपने बहुत उचित सोचा है। हम तीनों मिल कर काफी काम सँभाल सकेंगे और इस प्रकार आपका बोझ बहुत कुछ हल्का हो जायगा।"

श्यामलाल समझ गया कि बिना स्पष्ट कहे हुए काम नहीं चलेगा। बँटवारे की बात घनश्याम की कल्पना में भी नहीं आ सकती थी। अतः यदि वह अपने तात्पर्य को अस्पष्ट रीति से ही प्रकट करता रहेगा तो घनश्याम सहज भाव से उसके और ही और अर्थ लगाता जायगा। यह सोच कर उसने आँखों को कुछ झुका कर स्वर को कुछ धीमा करते हुए कहा—"और जानते हो इसके लिए मैंने एक ऐसा सरल उपाय भी खोज निकाला है जिससे हमारे कार्य में कभी कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।"

"वह कौन-सा उपाय है ?" घनश्याम की उत्सुकता पूर्ववत हो गई।

श्यामलाल ने स्वर को और भी धीमा करते हुए कहा—"सम्पत्ति का बँटवारा।"

घनश्याम पर जैसे वज्रपात हुआ। वह यह सुनने के लिए कदापि तैयार नहीं था। एक क्षण के लिए उसे ऐसा लगा कि वह पृथ्वी पर न हो कर आकाश में लटका हुआ है। उसने सोचा कि हो सकता है यह सब स्वप्न हो, किन्तु यह स्वप्न जैसा तो प्रतीत नहीं हो रहा था। सामने ही उसके भैया बैठे हुए थे। वह निरन्तर उसके भावों को पढ़ने का प्रयास कर रहे थे। उसके आस-पास भी वही परिचित खेत थे। स्वप्न की दुनिया में भी ये सब वस्तुएँ हो सकती थीं, किन्तु फिर भी इतना तो घनश्याम को निश्चय हो गया कि वह स्वप्न न होकर सत्य ही था। यदि स्वप्न रहा होगा तो इतनी कटु बात सुन कर क्या वह अब तक जाग्रत न हो चुका होता ? तो जो बात उसने अभी सुनी थी वह सत्य थी और उसे उन्हीं श्यामलाल भैया ने कहा था जो सदैव संगठन में विश्वास

रखते थे, और जिनके इस सिद्धान्त के कारण ही पिता की मृत्यु के उपरान्त भी वंश की मान-मर्यादा का सिक्का शत्रु-मित्र सभी के हृदयों पर बैठा हुआ था। फिर उसने सोचा कि यह सब मिथ्या है। या तो भैया आज अपने आपे में नहीं हैं और या उनका तात्पर्य कुछ और ही रहा होगा। उसे लगा कि अवश्य ही उसके समझने में कहीं कोई भूल हुई है।

बँटवारे की बात सुन कर घनश्याम को इस प्रकार काफी समय तक विचारों में लीन देख कर श्यामलाल से न रहा गया। वह उसका उत्तर सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। अतः उसने पुनः प्रश्न किया—"क्या सोच रहे हो घनश्याम ? मेरी बात का कुछ उत्तर नहीं दिया तुमने ? क्या वह उपाय तुम्हें ठीक नहीं लगा ?"

घनश्याम अपने विचारों में उलझा हुआ था। उसे स्मरण ही नहीं रहा था कि अभी उसे उसका उत्तर भी देना है। श्यामलाल की बात सुन कर वह चौंक पड़ा और हकलाता हुआ-सा बोला—"प......र पर भैया ! मैं आपके उपाय का अर्थ नहीं समझा। उसी को समझने का प्रयत्न कर रहा था।"

"वाह, यह खूब रही ! आखिर इस में न समझने की तो कोई बात ही नहीं है। मैं कह रहा था कि यदि हम सब चल तथा अचल सम्पत्ति को चार भागों में बाँट लें तो सब समस्याएँ स्वयं ही हल हो जायंगी। तुम्हें, सतीश और धर्म को काम भी मिल जायगा और मेरा बोझ भी हल्का हो जायगा।"

"किन्तु भैया ! क्या बँटवारे के बिना ये समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं ? क्या मैं, सतीश और धर्मचन्द्र सम्मिलित सम्पत्ति के होते हुए, आपकी आज्ञा में रह कर कार्य करते हुए, आपका कार्य-भार हल्का नहीं कर सकते ?"

"क्यों नहीं कर सकते ? किन्तु मैंने भली-भाँति सोच-विचार कर

देख लिया है कि सम्पत्ति का बँटवारा हमारे वंश के लिए प्रत्येक प्रकार से लाभप्रद ही सिद्ध होगा।"

सम्पत्ति के बँटवारे और वंश के लाभ के इस सम्बन्ध को सुन कर घनश्याम को कुछ झुँझलाहट हुई। आखिर भैया को आज हो क्या गया है जो वंश-घालक कार्य को वंश-पालक सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं। फिर भी प्रकट रूप से उसने शान्त भाव से यही प्रश्न किया--

"वंश-नाशक के रूप में प्रसिद्ध कार्य में आप वंश का क्या लाभ देखते हैं?"

"बहुत लाभ है घनश्याम! यह आवश्यक नहीं है कि एक परिस्थिति में जो वस्तु वंश-नाशक सिद्ध हो चुकी है, भिन्न परिस्थितियों में भी वह वैसी ही रहेगी। इसके विपरीति परिवर्तित परिस्थितियों में वह लाभदायक भी सिद्ध हो सकती है। यही कारण है कि वर्तमान परिस्थितियों में मैं अपने वंश के लिए बँटवारे को साझे की अपेक्षा अधिक लाभदायक समझ रहा हूं।"

"किस तरह?" घनश्याम ने मन में और भी अधिक झुँझला कर पूछा।

"यदि हृदय के भावावेग को रोक कर शान्त चित्त होकर विचार करो तो तुम्हें स्वयं ही वे सब लाभ दिखलाई पड़ने लगेंगे। यह तो तुम जानते ही हो कि केवल हरिपुर ही नहीं, उसके आस-पास के गाँवों में भी हमारे वंश-संगठन तथा मान-मर्यादा की चिरकाल से प्रसिद्धि है।"

"यह कौन नहीं जानता भैया! आज हरिपुर का बच्चा-बच्चा इस बात से परिचित है।"

"और यह भी सब जानते हैं कि हमारी और जाटों की चिरकाल से शत्रुता है। पिता जी और भाइयों की मृत्यु के कारण उनका पलड़ा भारी हो गया है। फिर भी उन्हें मुझ से और तुम से काफी भय है। ऐसी स्थिति में वे जायदाद की बात लेकर सतीश और धर्मचन्द्र को हम

दोनों को, और बड़ा होने के कारण, विशेषकर मेरी ओर से भड़काएंगे। भाँति-भाँति के प्रमाण दे कर हमें बेईमान सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार व्यर्थ का मनोमालिन्य बढ़ेगा। इससे अच्छा यही है कि हम पहले ही जायदाद का समान रूप से बँटवारा कर सब को सन्तुष्ट कर दें। फिर न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।"

घनश्याम को चुप देख कर श्यामलाल समझ गया कि वह उसकी बात के सत्य को पहचान रहा है। अतः उसने पुनः उसी सिलसिले को जारी रखते हुए कहा—

"यह ठीक है कि सतीश और धर्मचन्द्र निरे बच्चे नहीं हैं जो सहज ही किसी के बहकाने में आ जायँगे, बालिग हैं, चतुर हैं, समझदार हैं, शादीशुदा हैं, कहने का तात्पर्य यह है कि हर प्रकार से योग्य हैं, किन्तु हैं तो आखिर मनुष्य ही! बार-बार बहकाए जाने पर उनका मन अवश्य फिर जाएगा। आखिर कुएँ के पत्थर पर से जब अनेक बार रस्सी गुज़रती है तो उस पर निशान पड़ ही जाता है।"

अब तक घनश्याम चुपचाप सब सुन रहा था, किन्तु अब उससे न रहा गया। बोला—"किन्तु भैया, सब को एक लाठी से हाँकना उचित नहीं है। यदि वे दोनों किसी के बहकाने से आपको बेईमान समझने लगेंगे तो मैं तो नहीं समझ लूँगा। क्या आप को मुझ पर भी अविश्वास है?"

श्यामलाल समझ गया कि घनश्याम का संकेत किस ओर है। अतः उसे समझाते हुए कहने लगा—"नहीं घनश्याम! मैं तुम पर अविश्वास नहीं करता, किन्तु यह उचित नहीं होगा कि उन दोनों को अलग कर हम दोनों सम्मिलित रहें। इससे व्यर्थ का लोकापवाद फैलेगा कि बड़े भाइयों के मरने पर हम दोनों ने उनकी सन्तानों को दूध की

"फिर भी भैया ! हमारे वंश की मान-मर्यादा, एकता..."

श्यामलाल ने उसे बीच में ही रोकते हुए कहा—"वंश की मान-मर्यादा का मुझे तुम से कम ध्यान नहीं है घनश्याम ! तुम तो स्वयं जानते हो कि मैंने वंश में एकता का कितना प्रचार किया है, किन्तु आज स्थिति बदल चुकी है। संसार में कोई भी अमर होकर नहीं आता। कल को, ईश्वर न करे, बड़े भाइयों की भाँति हम दोनों भी चल बसें और पीछे से हमारे बच्चे सम्पत्ति के लिए लड़ें तो इस से क्या हमारे वंश की मान-मर्यादा एकदम समाप्त न हो जाएगी ?"

"किन्तु भैया ! हम दोनों का तो कोई लड़का है नहीं और सतीश और धर्मचन्द्र में परस्पर इतना स्नेह है कि लड़ाई-झगड़े की सम्भावना अधिक नहीं है।"

इतनी देर बाद इस बात को सुनकर श्यामलाल के मुख पर मुस्कराहट खेल गई। बोला—

"यह ठीक है कि हम दोनों पुत्र-हीन हैं, किन्तु विधाता का क्या पता ! ज़रूरी नहीं है कि हम सदा ऐसे ही रहें। क्या तुम समझते हो कि हम दोनों ने इतने गहरे पाप किए हैं कि हमें अन्त तक कभी पुत्र-प्राप्ति होगी ही नहीं ?"

इस बात को कहते-कहते श्यामलाल का मुख मलिन हो गया। फिर भी उसने कथन जारी रखा—"खैर, पुत्र न सही, पुत्रियाँ तो हैं। उनके पालन-पोषण और विवाह के लिए भी रुपयों की आवश्यकता होगी। यदि कल को हम न रहे तो सब सम्पत्ति सतीशचन्द्र और धर्मचन्द्र को मिलेगी। यदि लोभ वश अथवा किसी के बहकाने-सिखाने से वे हम दोनों की पुत्रियों का भार उठाना अस्वीकार कर दें तो बताओ वह किस के द्वार पर जाकर भीख माँगती फिरेंगी। अतः सब तरह से यही अच्छा है कि सम्पति का बँटवारा अभी कर दिया जाए।"

घनश्याम ने विचार कर देखा तो उसे लगा कि भैया ने जो कुछ

कहा है वह बहुत सोच-विचार कर कहा है और वह बिल्कुल सत्य है। उसे अपने इस भैया की दूरदर्शिता पर पहले ही गर्व था, किन्तु अब तो उसकी श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई। फिर भी एक सन्देह उसके मन को रह-रह कर कचोट रहा था। आखिर उसने कह ही दिया—"यह तो ठीक है भैया, किन्तु सम्पत्ति-बँटवारे से पारस्परिक मनोमालिन्य का जन्म हो जाएगा। सब अभी से अपने को एकदम पृथक समझने लगेंगे और इस प्रकार स्नेह-भावना का नाश हो जाएगा।"

"यह तुम्हारा भ्रम है घनश्याम ! तुम ऐसा सोच कर ठीक नहीं करते हो। मेरा तो विचार है कि सम्पत्ति-रूपी काँटे के निकल जाने पर हमारे हार्दिक प्रेम के बढ़ने की अपेक्षाकृत अधिक सम्भावनाएँ हैं। सम्पत्ति और प्रेम का सम्बन्ध भी क्या ? जो प्रेम सम्पत्ति के आधार पर खड़ा हो उसका नष्ट हो जाना ही अच्छा है। सच्चा प्रेम वही है जो प्रत्येक परिस्थिति में समान रहे। इससे भिन्न प्रेम का बन्धन मिथ्या, भ्रमपूर्ण और माया-जाल से युक्त होगा। तुम कहते हो कि सम्पत्ति-बँटवारे के बाद हम अपने को एक दूसरे से पृथक् समझने लगेंगे। ये वचन तुमने किस की आत्मा को पहचान कर कहे हैं ? शतीश की, धर्मचन्द की, अपनी अथवा मेरी ? यदि मेरे विषय में तुम्हारा यह विचार हो तो मैं तुम से शपथ पूर्वक कह सकता हूँ कि मैं तुम तीनों को कभी अपने से अलग नहीं समझूँगा। चाहे तुम्हारी ओर से मेरे साथ किसी भी प्रकार का व्यवहार क्यों न हो। मैं सदा तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहूँगा।"

घनश्याम कुछ अप्रतिभ-सा हो कर बोला—"नहीं भैया ! आप पर मुझे कभी अविश्वास नहीं हुआ। वास्तव में ये बातें मैंने किसी विशेष व्यक्ति को लक्ष्य में न रख कर सामान्य रूप में ही कही थीं। आपने अब मेरी सभी शंकाओं को शान्त कर दिया है। अब मैं भी आपकी भाँति यही सोचता हूँ कि सम्पत्ति-विभाजन हमारे वंश के लिए प्रत्येक प्रकार से लाभदायक सिद्ध होगा।"

यह सुन कर श्यामलाल का हृदय प्रसन्नता से भर गया। उसने निश्चय ही एक महत्वपूर्ण समस्या को हल कर लिया था। घनश्याम को मनाना सहज नहीं था किन्तु अन्त में उसकी मनोकामना पूर्ण हो हो गई। अतः उसने प्रसन्न मुद्रा से कहा—"कल प्रातः ही वकील के यहां चलकर इस विभाजन के कार्य को सम्पन्न कर डालना ठीक रहेगा। किसी ने उचित ही कहा है कि शुभ कार्य के पूर्ण करने में देर नहीं लगानी चाहिए। इस बीच तुम, सतीश और धर्मचन्द्र को भी स्थिति से अवगत करा देना, जिससे अन्त में कोई विरोध उत्पन्न न हो।"

जब घनश्याम ने सतीश और धर्मचन्द्र को सम्पत्ति-विभाजन की बात बतलाई तो उन्होंने किसी प्रकार का विरोध न कर शान्त भाव से उसे स्वीकार कर लिया। वास्तव में वे दोनों नई शिक्षा के प्रकाश से प्रभावित थे और आर्थिक दृष्टिकोण से स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना ही उन्हें प्रिय था। घनश्याम को ऐसा लगा जैसे वे दोनों पहले से ही इसके लिए तैयार बैठे थे। परिवार में इतने बड़े उलट-फेर की बात सुन कर भी कोई इतना शान्त रह सकता है, यह उसके लिए एक नई बात थी। न तो उसने उनके माथों पर किसी प्रकार की शिकन देखी और न ही उनके चेहरों पर चिन्ता की रेखाएं उभरीं। यह देख कर घनश्याम के मन को बड़ा धक्का पहुँचा। परिस्थितियों पर विचार करने पर भी अभी उसका मन डाँवाडोल ही था। उसे आशा थी कि कम से कम उसके भतीजे ही इस बिगड़ती हुई स्थिति को सम्हाल लेंगे, किन्तु उसकी मनोकामना पूरी न हुई। एक बार उसने उनकी ओर निराश दृष्टि से देखा और फिर थका हुआ-सा घर की ओर लौट पड़ा। पहले पिता और भाइयों की मृत्यु ने और अब सम्पत्ति-विभाजन की इस समस्या ने उसके जीवन को ऐसे प्रबल झटके दिये थे कि उसे अपने ऊपर विश्वास ही नहीं रहा था। श्यामलाल से फिर कुछ कह सकने का साहस भी उसमें न था।

दूसरे दिन सम्पत्ति का बंटवारा हो गया। सतीश और धर्मचन्द्र

जमीन की अपेक्षा दुकानों को अधिक पसन्द करते थे। अतः उन्होंने एक-दो खेत और बाकी दुकानें तथा मकान ही लिए। घनश्याम ने भी खेतों की अपेक्षा दुकान और मकान ही अधिक लिये। श्यामलाल के पास खेत सब से अधिक आये। सब के लिये यह अच्छा ही हुआ, क्योंकि लगान वसूल करने में वह सबसे सिद्धहस्त था।

हरिपुर में सब से अधिक प्रतिष्ठित तथा संगठित इस वैश्य-परिवार के सम्पत्ति-बंटवारे की बात गाँव में बिजली की भाँति फैल गई। इस समाचार को जो भी जाट सुनता था, वही इसे अपनी जाति के सौभाग्य की सूचना देने वाला मान कर प्रसन्नता से विभोर हो उठता था। हरिराम को ज्यों ही यह समाचार मिला, त्यों ही उसकी बाँछें खिल गईं। इस वंश के कारण उसे अभी हाल में जो कारावास-दण्ड भुगतनी पड़ा था उसका काँटा अभी तक उसके हृदय में कसक रहा था। आज इस समाचार से मानो वह काँटा निकल गया। उसकी प्रसन्नता बाँध तोड़ कर बह चली। वह उस समय भोजन कर रहा था, किन्तु अब उसके लिए वहाँ रुके रहना असम्भव हो गया। अतः वह भोजन को बीच में ही छोड़ कर हाथ-मुंह धो कर सीधा मंगू चौधरी के घर पहुंचा। मंगू चौधरी उस समय भोजन समाप्त कर चारपाई पर बैठे हुए हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। जिस समाचार को हरिराम बतलाने आया था, उसे उन्होंने अभी नहीं सुना था। फिर भी उन्होंने हरिराम को जिस हर्षोत्फुल मुद्रा में आते हुए देखा, उससे उन्होंने सहज ही अनुमान लगा लिया कि लाला जी के वंश में अवश्य ही कोई अनिष्ट हुआ है। हरिराम के मुख की वर्तमान प्रसन्नता उन्हें वैसी ही लगी जैसी लाला जी और उनके पुत्रों की मृत्यु का समाचार सुन कर वह पहले प्रकट कर चुका था। अतः वह हुक्का पानी छोड़ कर किसी प्रिय समाचार को सुनने के लिए सावधान हो कर बैठ गए। हरिराम ने आते ही मुस्करा कर कहा—

"तुमने कुछ सुना चौधरी ?"

"कौन-सी बात ?' चौधरी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

"तो क्या तुम सचमुच नहीं जानते ?" हरिराम ने कुछ अविश्वास-सा जताते हुए कहा ।

"पहले पता भी तो लगे कि तुम्हारा तात्पर्य किस बात से है । तभी तो कुछ उत्तर दे सकूँगा ।" मंगू चौधरी बोले ।

"अच्छा ! मैं समझ गया कि तुम नहीं जानते । यदि जानते होते तो मेरे इतना कहने से ही समझ जाते । यार, बड़ी मज़ेदार बात है । मिठाई खिलाओ तो बताऊं ।" हरिराम ने कुछ देर रुक कर कहा ।

"पहले बताओ तो सही ।" चौधरी ने अत्यन्त उत्सुक हो कर कहा ।

"नहीं, ऐसे मुफ्त में नहीं ! पहले मिठाई खिलाने की हामी भरो । मैं कोई ऐसी-वैसी बात सुनाने के लिए नहीं आया हूँ । लाला जी के वंश-नाश से सम्बन्धित एक बात है ।"

चौधरी के मन की बात सत्य निकली । उनका शान्त चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा । हँस कर बोले—"ज़रूर खिलाऊंगा भाई ! बस । अब तो बतला दो ।"

"श्यामलाल ने सम्पत्ति का बंटवारा कर दिया है ।" हरिराम ने रस लेते हुए कहा ।

"सच ?"

"सच नहीं तो क्या झूठ ! आज प्रातः ही यह सब कार्य हुआ है । गाँव का प्रत्येक जाट जान गया है । आश्चर्य है कि तुम्हें अभी तक पता नहीं लगा ।"

चौधरी ने हरिराम की अन्तिम बात को अनसुनी करते हुए कहा—"बात तो तुमने निश्चय ही मिठाई खिलाने योग्य सुनाई है । अब तो उन में परस्पर फूट पैदा करना बड़ा सरल है । हो सकता है कि उनमें

फूट पहले ही उत्पन्न हो चुकी हो। नहीं तो बँटवारे का प्रश्न ही क्यों उठता? यदि ऐसा ही हुआ तो बहुत अच्छा होगा। हम अपने पहले के बदले गिन-गिन कर लेंगे। अब देख लेंगे कि कैसे वैश्य हरिपुर के सरगना बने रह सकेंगे। मैं भी यदि अपनी पहली गद्दी न सम्भाल लूँ तो मेरा नाम भी मंगू नहीं।" चौधरी ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा।"

चौधरी की प्रसन्नता को लक्षित कर हरिराम ने शंका प्रकट करते हुए कहा—"किन्तु एक बात है चौधरी।"

"वह क्या?" चौधरी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देख कर कहा।

"जैसे तुम समझ रहे हो, वैसा नहीं है। सम्पत्ति का बँटवारा तो हो गया है, किन्तु सम्बन्ध उनके पूर्ववत ही हैं। यह बँटवारा फूट के कारण नहीं हुआ है।" हरिराम ने गंभीरता पूर्वक कहा।

चौधरी हंस कर बोले—"अरे फूट के कारण नहीं हुआ है तो बिना फूट के ही सही! बँटवारा तो हो ही गया। अब फूट डलवाने में कितनी देर लगेगी? हाँ, यह बतलाओ कि क्या तुम्हारी दृष्टि में कोई ऐसा जाट है जिस पर घनश्याम का काफी विश्वास हो।"

"है क्यों नहीं? मेरा चचेरा भाई धनीराम है। वह ईमानदारी से पूरा लगान चुका देता है। इसलिए घनश्याम और श्यामलाल उसे बहुत मानते हैं।" हरिराम ने सोच कर कहा।

"बस फिर ठीक है, किन्तु धनीराम तुम्हारे कहने से उन में परस्पर फूट डालने का कार्य करना स्वीकार करेगा या नहीं?"

"करेगा क्यों नहीं, आखिर मेरा छोटा भाई है। क्या इतनी सी बात भी नहीं मानेगा? उसने कभी मेरी बात नहीं टाली है। फिर यह तो जाति के लाभ का कार्य है।" हरिराम ने गर्व से कहा।

"तो फिर तुम उसे इस बात के लिए तैयार करो कि वह घनश्याम

का मन श्यामलाल की ओर से फेर दे। सतीश और धर्मचन्द्र की हमें कोई चिन्ता नहीं है। वे तो कल के बच्चे हैं, किन्तु श्यामलाल और घनश्याम का प्रेम अवश्य चिन्तनीय है। उनमें फूट पड़ते ही हमारा काम बन जाएगा। काम हो जाने पर मैं तुम्हें और धनीराम को एक-एक हज़ार रुपए इनाम दूँगा।"

१०००) रुपए की बात सुन कर हरिराम के मुँह में पानी भर आया। तभी उसे मिठाई की याद आ गई। व्यंग्य करता हुआ बोला—"बस चौधरी! तुम्हारी प्रतिज्ञा का नमूना मिल चुका। अभी मिठाई खिलाने की प्रतिज्ञा की थी पर बिना खिलाए बातों में ही बहका रहे हो।"

मंगू चौधरी बात बिगड़ते देख कर बोले—"वाह! यह तुम ने कैसे समझा कि मैं तुम्हें बहका रहा हूँ। ज़रा बातों-बातों में भूल गया था। अभी लो जितनी मिठाई चाहो मंगवा देता हूँ।"

चौधरी ने अपने बड़े लड़के को भेज कर दस सेर लड्डू मँगवा कर हरिराम के सामने रख दिए। दोनों ने खूब खाए। चौधरी ने लड़के के हाथ लड्डुओं की एक-एक टोकरी हरिराम और धनीराम के घरों पर भी भिजवाई। हरिराम बड़ा प्रसन्न हुआ और चौधरी के गुण गाता हुआ विदा हुआ। जाने से पूर्व चौधरी ने एक बार पुनः पूछा—"तो फिर हरिराम पक्की रही न?"

हरिराम ने प्रसन्न मुद्रा से उत्तर दिया—"अवश्य चौधरी जी। चिन्ता न करिए। यह मेरा अपना ही काम है। मुझे भी तो इन सालों से अपने जेल जाने का बदला लेना है।"

★

तीन

श्यामलाल के दो विवाह हुए, किन्तु पुत्र की मनोकामना पूर्ण न हो सकी। पहली पत्नी राधावती सुन्दरी तथा बुद्धिमती थी। श्यामलाल उससे अत्यन्त स्नेह करता था, किन्तु वह केवल चार वर्ष तक ही उसका साथ दे सकी। एक कन्या को जन्म देने के बाद वह ऐसी सख्त बीमार पड़ी कि फिर चारपाई से नहीं उठी। श्यामलाल ने बहुत सेवा की, हकीम-डाक्टरों पर भी बहुत-सा रुपया बर्बाद किया, किन्तु परिणाम में कोई अन्तर न आया। छः मास की दीर्घ बीमारी के पश्चात् राधा देवी श्यामलाल को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गई। श्यामलाल की बहन परमेश्वरी उन दिनों पिता और भाइयों के पास ही रहती थी। उसका पति लखनऊ में छात्रावास में रह कर पढ़ रहा था। राधा देवी के बीमार हो जाने पर उसने नन्हीं बच्ची विद्या को सँभाल लिया। अतः श्यामलाल उस ओर से निश्चिन्त हो गया। फिर भी श्यामलाल को सँभालने वाला कोई नहीं था। चार वर्ष तक साथ देने वाली सहयोगिनी को खो कर उसका अन्तःस्तल विक्षुब्ध हो उठा।

पुत्र की यह दशा देख कर पिता ने उसका दूसरा विवाह करना चाहा, किन्तु श्यामलाल की अन्तरात्मा ने यह स्वीकार नहीं किया। वैसे उसकी आयु उस समय अधिक नहीं थी और वह यही कोई तीस वर्ष के लगभग था। गोरे रंग, छरहरे किन्तु भरे हुए बदन, सुन्दर गोल मुख और ऊँचे माथे आदि के कारण वह अपनी आयु से दो-तीन वर्ष छोटा

प्रतीत होता था। कोई भी प्रतिष्ठित तथा सम्मानित वैश्य परिवार उससे सम्बन्ध स्थापित कर अपने को धन्य समझता, किन्तु श्यामलाल को दूसरा विवाह करना हास्यास्पद-सा प्रतीत होता था। वह सोचता था कि यदि दूसरी पत्नी के आने पर वह मृत पत्नी की स्मृति भुला नहीं सका तो दूसरी पत्नी से वह स्नेह नहीं कर सकेगा। इस प्रकार यह उसके प्रति अन्याय होगा। यदि स्थिति दूसरी रही अर्थात यदि दूसरी पत्नी को देख कर वह पहली पत्नी की स्मृति खो कर उसके प्रेम में निमग्न हो गया तो यह मृत पत्नी के प्रति अन्याय होगा और स्वर्ग में उसकी आत्मा को दुख पहुँचेगा। इस प्रकार उसने भली-भाँति सोच कर देख लिया कि दूसरा विवाह किसी स्थिति में भी श्रेयस्कर सिद्ध नहीं होगा। इसी कारण उसने पिता और सम्बन्धियों की बात नहीं मानी। यद्यपि पिता की आज्ञा का उलंघन करने का यह पहला ही अवसर था और इसके लिए वह लज्जित भी था, तथापि वह विवश था।

मन की विक्षुब्धता की शान्ति के लिए श्यामलाल ने धर्म की शरण ली। पहले उसने कभी मन्दिर की ओर रुख नहीं किया था, किन्तु अब वह बिना नागा प्रातःकाल मन्दिर जाने लगा। कुछ दिनों बाद मन्दिर में बनारस के एक विद्वान पण्डित जी ने पदार्पण किया। श्रद्धालु जनों ने उनका खूब सत्कार किया और उन से प्रार्थना की कि वह मन्दिर में रह कर उन्हें नित्य ज्ञानामृत का पान करायें। पण्डित जी ने इसे स्वीकार कर लिया और नित्यप्रति रात्रि के समय मन्दिर में कथा होने लगी। श्यामलाल भी श्रद्धालुओं में से एक था। वह पण्डित जी के उपदेशों को बड़े ध्यान से सुनता था और उनके अनुसार कार्य करने का प्रयास करता था।

एक दिन ज्ञानोपदेश देते समय प्रसंगवश पण्डित जी ने शास्त्रों से उद्धृत एक श्लोक पढ़ा जिसका तात्पर्य यह था कि बिना पुत्र के मुक्ति प्राप्त नहीं होती। अन्य श्रोताओं के लिए यह सामान्य सी बात थी,

किन्तु श्यामलाल के हृदय में मानो किसी ने तीर मार दिया। प्रयत्न करने पर भी उसका मन कथा में आगे नहीं लगा। घर आकर वह देर तक उस श्लोक के विषय में ही विचार करता रहा। उसने सोचा—"उफ! मैं कितना पापी हूँ। चार वर्ष तक पत्नी जीवित रही फिर भी पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई। यह सब मेरे पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। नहीं तो जैसे लड़की हुई थी वैसे लड़का भी हो सकता था, किन्तु अब क्या किया जाए? पत्नी मर चुकी और दूसरा विवाह मैं करूंगा नहीं। तो फिर पुत्र कैसे होगा? तो क्या मृत्यु के पश्चात् मुझे मुक्ति नहीं मिलेगी? हे ईश्वर! क्या मेरी आत्मा नरक में ही भटकती रहेगी? नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगा। मैं अवश्य ही दूसरा विवाह करूंगा। मेरे सिद्धान्त को धक्का लगेगा, मेरी प्रतिज्ञा टूट जाएगी, पर कोई चिन्ता नहीं। मुक्ति तो मिल जाएगी नरक से तो छुटकारा मिलेगा।"

यह दृढ़ संकल्प कर वह निद्रा-मग्न हो गया। स्वप्न में उसने देखा कि वह मर चुका है। और यम के दूत उसे उठा कर नरक में ले आए हैं। वहाँ के भयंकर दृश्यों को देख कर उसका हृदय काँप उठा। कई व्यक्ति लोहे के काँटों से छेदे जा रहे थे, कुछ गर्म कढ़ाई में तले जा रहे थे और कुछ अग्नि में जलाये जा रहे थे। उसी समय दो यमदूतों ने उसे कस कर पकड़ा और उन में से एक ने कहा—"तुम पुत्रहीन हो। अतः तुम्हारा पिण्ड-दान नहीं हुआ है। इस कारण तुम्हें पहले आग में भूना जायगा, और फिर खौलते हुए तेल की कढ़ाई में डाला जायेगा।"

इसके पश्चात् दोनों यमदूतों ने उसे निर्दयता से उठाया। भयंकर रूप से प्रज्ज्वलित अग्नि को देख कर श्यामलाल के मुख से एक चीख निकल गई और उसी समय उसकी आँखें खुल गईं। वह बहुत देर तक उस स्वप्न पर विचार करता रहा और उसके दूसरे विवाह का संकल्प और भी दृढ़ होता गया। बड़ी कठिनता से उसकी आँखें दुबारा लगीं तो उसने देखा कि उसकी मृत पत्नी साक्षात् उसके सामने खड़ी है और कह

रही है—"प्राणनाथ, यदि तुम पुत्र के लिए दूसरा विवाह करना चाहते हो तो व्यर्थ है। तुम्हारे भाग्य में पुत्र नहीं है। यदि होता तो क्या मैं ही तुम्हें पुत्र न दे देती। तुम चिन्ता न करो। पुत्र के बिना भी तुम्हें मुक्ति मिलेगी।"

सहसा श्यामलाल की आँखें खुलीं तो उसने देखा कि प्रातःकाल हो चुका था। उसने सुना हुआ था कि प्रातःकाल का स्वप्न सत्य होता है। उसने सोचा कि क्या यह सत्य है कि दूसरा विवाह करने पर भी उसे पुत्र नहीं मिलेगा? फिर दूसरा विवाह किस लिए? केवल पुत्र के लिए ही तो वह विवाह करना चाहता था, किन्तु क्या पता कि स्वप्न मिथ्या हो। सहसा उसे अपना पहला स्वप्न याद आया जिसमें यमदूत उसे अग्नि में डाल रहे थे। वह सिहर उठा। उसने संकल्प किया कि वह विवाह अवश्य करेगा, शायद उसकी मनोकामना पूर्ण हो ही जाए। विवाह न करने पर तो आशा के सब द्वार ही बन्द हो जाएँगे।

जब उसने पिता को अपना संकल्प बतलाया तो वह आश्चर्य-चकित रह गए। वह कह-कह कर हार मान चुके थे, किन्तु श्यामलाल ने दूसरे विवाह की स्वीकृति नहीं दी थी। फिर जब से उसकी रुचि धर्म की ओर हो गई थी तब से तो उन्होंने बिल्कुल आशा ही त्याग दी थी और दूसरे विवाह के लिए कहना छोड़ दिया था। इस आकस्मिक परिवर्तन को देख कर उनका मस्तिष्क चकरा गया। उन्होंने सोचा कि इसका क्या कारण हो सकता है? उन्होंने तो सब सम्बन्धियों से कह दिया था कि वे श्यामलाल से इस विषय में बातें करें और उन्हें विश्वास था कि किसी ने की भी नहीं होगी तो फिर किस के दबाव से वह ऐसा करने को तैयार हो गया है। सहसा एक विचार उसके मस्तिष्क में बिजली की भाँति कौंध गया। कहीं ऐसा तो नहीं है कि श्यामलाल किसी लड़की से प्रेम करने लगा हो। उफ! हे भगवान्! रक्षा करना। यदि ऐसा हुआ तो इस उच्च तथा प्रतिष्ठित वंश के यश पर कालिमा

छा जायगी। न जाने वह लड़की किस कुल तथा जाति की हो। यदि किसी निम्न कुल की हुई तो उनकी सातों पीढ़ियाँ तर जाएँगी। नहीं, नहीं वह ऐसा कभी नहीं होने देंगे। वह ऐसी लड़की से विवाह करने की अनुमति कदापि नहीं देंगे। पुत्र को छोड़ना पड़े तो छोड़ देंगे, किन्तु कुल-मर्यादा को नहीं छोड़ेंगे। खैर, उस से पूछ कर पता तो लगाएँ कि बात क्या है? यह सोच कर प्रकट में उन्होंने पुत्र से कहा—"बेटा तुम किस लड़की से विवाह करोगे?"

श्यामलाल उनके मन की हलचल को पहचानने में असमर्थ रहा था। अतः उसने निश्चिन्तता से कहा—

"लड़की तो आपको ही निश्चित करनी है पिता जी! जिससे आप कहेंगे उसी से विवाह कर लूँगा।"

यह सुन कर लाला जी की सब दुश्चिन्ताएँ समाप्त हो गईं। उन्हें प्रसन्नता हुई कि उनके पुत्र का घर फिर से बसेगा और शायद कभी वह श्यामलाल के पुत्र का मुख भी देख सकेंगे। अब चाहे किसी भी कारण से श्यामलाल विवाह क्यों न करना चाहता हो, उन्हें वह सब जानने की कोई उत्सुकता नहीं थी। उनकी मनोकामना किसी प्रकार पूर्ण हो गई, इसके लिए उन्होंने ईश्वर को लाख-लाख धन्यवाद दिया। राधादेवी के मरने के बाद श्यामलाल के अनेक रिश्ते आए थे। उनमें से लाला जी ने एक प्रतिष्ठित कुल की लड़की को पुत्र के लिए चुना था, किन्तु पुत्र के अस्वीकार करने पर उनकी प्रसन्नता पर मानो तुषारापात हो गया था। अब पुत्र की स्वीकृति का अमृत पाकर उनकी प्रसन्नता की बेल फिर से लहलहा उठी। उन्होंने तुरन्त ही वहाँ इस आशय का एक पत्र लिख दिया। उधर से भी यथा-समय इस सम्बन्ध की स्वीकृति का मधुपूर्ण पत्र आया और विवाह की तिथि निश्चित हो गई।

इस प्रकार श्यामलाल का दूसरा विवाह हो गया । कुछ दिन बाद व्यवहार से स्पष्ट हो गया कि नई पत्नी जितनी सुन्दरी थी, उससे अधिक बुद्धिमती थी । यह देख कर सब को बड़ी प्रसन्नता हुई । श्यामलाल ने मन ही मन अपने भाग्य की सराहना की । नई पत्नी के गुणों को देख कर उसे अनेक बार ऐसा प्रतीत हुआ कि पहली पत्नी में अनेक त्रुटियाँ थीं । यदि वह दूसरा विवाह न करता तो उसका जन्म व्यर्थ ही रहता । यह सब धर्म की ओर उसके रुख का प्रताप था जो उसे इस विवाह की प्रेरणा मिली । अतः धर्म के प्रति उसकी श्रद्धा और भी अधिक बढ़ गई । फिर दूसरी पत्नी के आने पर वह पहली पत्नी की स्मृति को पूर्णतः नहीं भुला सकता था । आखिर उसने अपने जीवन के चार साल उसके माधुर सम्पर्क में व्यतीत किए थे । इतना होने पर भी नई पत्नी के रूप और गुणों के सामने वह स्मृति काफी धुँधली पड़ चुकी थी ।

नई पत्नी का नाम लक्ष्मी देवी था । अपने नाम के अनुरूप वह सचमुच ही लक्ष्मी-स्वरूपा थी । श्यामलाल तो उसे पाकर अपने दुखों को भूल ही गया । घर के अन्य प्राणियों के हृदयों पर भी उसने पूर्ण अधिकार जमा लिया । नन्हीं बच्ची विद्या को तो उसने बिल्कुल अपनी ही बच्ची समझा और बड़े प्रेम से उसका लालन-पालन करने लगी । विद्या ने अपनी जननी को तो विशेष देखा ही नहीं था, अतः उसने लक्ष्मी देवी को ही अपनी माता समझा । वास्तव में उसके प्रति किए गए लक्ष्मी देवी के प्रेम-व्यवहार को देख कर वस्तु-स्थिति से अपरिचित कोई भी प्राणी इस भेद को जानने में समर्थ नहीं हो सकता था कि वह बच्ची की सौतेली माता थी । परमेश्वरी के पति की नौकरी लग गई तो वह ससुराल चली गई । जाते समय उसका मन सन्तुष्ट था, क्योंकि उसे विश्वास हो चुका था कि उसकी भाभी विद्या की देख-रेख उससे भी अच्छी तरह करेगी ।

श्यामलाल जब सौतेली माता और पुत्री के परस्परिक प्रेम-भाव को देखता था तो दाँतों तले उँगली दबा लेता था। उसने अभी तक यही सुन रखा था कि सौतेली माँ कभी सौत के बच्चों से प्रेम नहीं करती, किन्तु उसके अपने घर का दृश्य निराला था। वह प्रायः सोचा करता था—"मेरे घर लक्ष्मी देवी के रूप में किसी देवी ने पदार्पण किया है। इसके आने से मेरे सब पाप धुल जाएँगे। अब मैं अवश्य पुत्रवान् बनूँगा। भला ऐसा कभी सम्भव है कि इतनी पुण्यशीला, मृदु-हृदया तथा सर्वप्रिया स्त्री को ईश्वर एक पुत्र न दे। ईश्वर के घर इतना अन्याय कभी नहीं हो सकता। यदि मेरे भाग्य से नहीं तो कम से कम लक्ष्मी देवी के भाग्य से अवश्य ही हमारे आगन में एक नन्हें कुसुम का विकास होगा। वह अपने सौन्दर्य, मधु एवं पराग से इहलोक में सब को अनुरंजित करता हुआ परलोक में मेरी मुक्ति का साधन बनेगा।"

आखिर एक दिन वह भी आया जब लक्ष्मी देवी गर्भवती हुई। सब के मन आशा-जन्य प्रसन्नता से खिल उठे। दाई ने देख कर बतलाया कि सब लक्षण लड़के के हैं, अयश्य ही लड़का होगा। श्यामलाल की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। उसने इसी दिन के लिए तो विवाह किया था। आखिर ईश्वर ने उसकी सुन ही ली। उसे अधिक दिन तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। पहली बार ही भगवान ने उसे पुत्र प्रदान करने की व्यवस्था कर दी। वह दाई सदा ठीक ही बतलाया करती थी। जब पहली पत्नी राधादेवी गर्भवती थी तो उसने स्पष्ट कह दिया था कि लड़की होगी और हुई भी लड़की ही। अब उसने भली-भाँति देख कर लड़के के लक्षण बतलाए हैं तो अवश्य ही लड़का होगा। अविश्वास का कोई कारण नहीं है। इस प्रकार मन में सोचते-सोचते श्यामलाल वस्तु-स्थिति को बिल्कुल भूल बैठता था। कभी-कभी उसे लगता कि उसके घर में पुत्र आ गया है। मंगल-वाद्य बज रहे हैं। वह मुदित मन से अपने पुत्र को देखने जा रहा है और…………!

सहसा उसकी कल्पना-शृंखला विशृंखल हो जाती थी और वह वास्तविक जगत् में आ जाता था।

लाला जी भी उन दिनों अत्यन्त प्रसन्न रहते थे। उनके दोनों बड़े पुत्रों के एक-एक लड़का था। अतः उनकी पौत्र खिलाने की कामना तो उनसे पूर्ण हो चुकी थी। फिर भी वह चाहते थे कि श्यामलाल और घनश्याम के पुत्रों को और खिला लें तो निश्चिन्तता से मरें। श्यामलाल का यह दूसरा विवाह था और फिर विशेषत: पुत्र के लिए ही किया गया था, यह भी उन्हें बाद में पता लग चुका था। इस कारण जब उन्होंने सुना कि दाई ने राधा देवी के पुत्र-प्रसव के लक्षण बतलाए हैं तब उन्होंने प्रसन्नता और सन्तोष की साँस ली।

नन्हीं अबोध विद्या की प्रसन्नता का कोई ऐसा कारण नहीं था। उसे किसी ने नहीं बतलाया था कि निकट भविष्य में ही उसे एक नन्हा भाई मिलने वाला है। फिर भी वह सदा प्रसन्न रहती थी। वास्तव में उसकी प्रसन्नता का कारण उसकी नई माँ का अपनत्व से भरा हुआ प्यार था जो उसे सदा प्रसन्न मुद्रा में चहकने की प्रेरणा प्रदान करता रहता था। प्रसव के दिन निकट आने पर भी लक्ष्मी देवी विद्या की देख-भाल में कमी नहीं करती थी। मातृ-हीना अबोध बालिका ने उसके हृदय के स्नेह को छीन लिया था।

अन्त में वह दिन आ ही गया जिसकी प्रतीक्षा ने सब को उत्सुक बना रखा था। दाई का कथन बिल्कुल सत्य निकला। जब विद्या प्रातःकाल सोकर उठी और नित्य की भाँति माँ को पास न पाकर रोने लगी तो घर के एक नौकर ने उसे प्यार से उठा कर गोद में ले लिया और बतलाया कि माँ उसके लिए एक छोटा भाई लेने गई थीं। अब ले आई हैं और नीचे के कमरे में उसके साथ सो रही हैं।

विद्या ने अपनी तुतली भाषा में कहा—"बैया को मुझे दो।"

नौकर उसे राधा देवी के कमरे के पास छोड़ आया वह अन्दर गई तो उसने देखा कि सचमुच ही एक छोटा-सा लाल लाल बच्चा उसकी माँ के पास लेटा हुआ टुकुर-टुकुर ताक रहा था। वह खुशी से किलकारी मारने लगी, फिर माँ से बोली—"मेला बैया, मैं लूँगी।"

यह कह कर उसने बच्चे को उठाने के लिए अपने नन्हें-नन्हें हाथ बढ़ा दिए, किन्तु माँ ने प्यार से कहा—"अभी तुम से गिर जाएगा बेटी! कुछ दिन ठहर जाओ, फिर लेना।"

विद्या को यह प्यार-भरा कथन धमकी-जैसा प्रतीत हुआ। वह चीख-चीख कर रोने लगी। उसका रुदन सुन कर श्यामलाल भीतर आ गए। वह वस्तु-स्थिति को देख कर मुस्कराए। उन्होंने विद्या को प्रसन्न करने के लिये अपने बच्चे को गोद में ले कर अपने हाथों में पकड़े-पकड़े ही उसे उसकी गोद में रख दिया। वह प्रसन्न हो कर हाथ से उसके कोमल गालों का स्पर्श करने लगी। कुछ देर बाद श्यामलाल ने बच्चे को लक्ष्मी देवी के पास लिटा दिया और विद्या को चुमकार कर बाहर ले गए।

लड़के के जन्म की आशा ने घर के प्राणियों को जितना प्रसन्न किया था, उससे चार गुनी प्रसन्नता उन्हें उसके आगमन से हुई। जब बिना आशा के फल-प्राप्ति होती है, तब हृदय में प्रसन्नता का एक गुबार उठता है, किन्तु वह केवल क्षणिक होता है। इसके विपरीत जब मानव-हृदय में चिरकाल से क्रीड़ा करती हुई आशा फलवती होती है तब व्यक्ति को एक विशेष प्रकार का प्रसन्नता-मिश्रित सन्तोष प्राप्त होता है। इस सन्तोष की जड़े बहुत गहरी होती हैं। स्मृति-मात्र से ही मानव को अपार आनन्द प्राप्त होता है। मुफ्त की कमाई और हलाल की कमाई में जो अन्तर है ठीक वही अन्तर उपयुक्त दोनों प्रकार की प्रसन्नताओं में है। यही कारण है कि बच्चे के जन्म ने श्यामलाल के परिवार को आकण्ठ प्रसन्नता में निमग्न कर दिया था।

लाला जी ने पौत्र के दसूठन पर गाँव भर को भोज देने का निश्चय किया। उसके पैदा होते ही उन्होंने भोज की तैयारियाँ करानी प्रारम्भ कर दीं और नवें दिन तक सब तैयारियाँ पूरी हो गईं। गाँव के सब लोगों को निमन्त्रण भेजा गया। अनेक प्रकार के मिष्टान्न तैयार किए गए। उधर विधाता कुछ और ही खेल रच रहा था। लाला जी और श्यामलाल को यदि उस खेल की झलक भी मिल गई होती तो उनकी प्रसन्नता कब की नष्ट हो चुकी होती। भावी से अनभिज्ञ होने के कारण वे उत्साहपूर्ण हृदयों से बच्चे के दसूठन के आयोजन में लीन थे। उधर क्रूर भाग्य बालक पर दृष्टि गढ़ाए हुए था। विधि ने वह बालक उन्हें हँसाने के लिए नहीं, अपितु रुलाने के लिए भेजा था। इसी कारण तो उसने उनके हृदय में गहरी जमी हुई प्रसन्नता की जड़ों को एक बारगी ही उखाड़ कर फेंक दिया। प्रसव के नवें दिन की रात्रि को जब भोज की सब वस्तुएँ तैयार हो चुकी थीं, शिशु को ज्वर हो गया और दूसरे दिन प्रातःकाल जब भोज के लिए निमन्त्रित व्यक्ति आने लगे तब सब को रुला कर चल बसा।

घर भर में कोहराम मच गया। कहाँ तो आमन्त्रित व्यक्ति खुशी में भाग लेने के लिए आए थे और कहाँ अब वे दुख के भागीदार बन गए। श्यामलाल की बहन परमेश्वरी भी दो दिन से आई हुई थी। सब से अधिक दुःख उसे हुआ। भतीजे के जन्म पर उसने उसके लिए अनेक कपड़े और खिलौने तैयार किए थे। वह बड़े शौक़ से अपने उपहारों को ले कर आई थी। स्वयं उसे भी इस अवसर पर भाई की ओर से अनेक उपहार मिलने थे, किन्तु अब स्थिति कुछ और ही हो गई थी। अपने जीवन में ऐसी करुण घटना न तो उसने देखी ही थी और न सुनी ही थी।

लक्ष्मी देवी के चेहरे पर एक गहरी मुर्दनी छा गई और श्यामलाल तो फूट-फूट कर रो पड़ा। उसने पुत्र-जन्म की आशा ले कर अनेक सुख-स्वप्न तो देखे थे किन्तु ऐसा गहरा दुःख उसकी कल्पना में नहीं

आया था। विद्या तो भोज के उत्सव की तैयारियों को देखने में मग्न थी। उसे इस आकस्मिक परिवर्तन का पहले कुछ भी पता न चला, किन्तु उसने देखा कि दादा जी उसके प्यारे भैया को कपड़े में लपेट कर ले जा रहे हैं तब वह चीख-चीख कर रोने लगी और कहने लगी—"भैया मुझे दो, मैं लूँगी।"

उसे चुप कराने का प्रयास करते हुए घनश्याम स्वयं भी रो पड़ा। अपने भैया के वंश के दीपक को बुझते देख कर उसका हृदय अत्यन्त दुखी था।

यद्यपि इस घटना से सभी लोगों को अपार दुःख हुआ, किन्तु लाला जी शान्त रहे। उनका हृदय मानो फौलाद का बना हुआ था। उनके जीवन में चाहे कितनी ही बड़ी विपत्ति क्यों न आई हो, वह कभी विचलित नहीं हुए थे। सुख में प्रसन्न होना उन्हें आता था, किन्तु दुःख में रोना उन्होंने नहीं सीखा था। विपत्ति पड़ने पर वह दार्शनिक की भाँति सोचते थे और इसी कारण उनका मन उद्वेगरहित रहता था। जिस पौत्र के जन्म पर वह इतने प्रसन्न हुए थे उसके शव को पृथ्वी की गोद में रखते समय उनके नेत्रों से दो बूंद आँसू भी नहीं गिरे। आमन्त्रित व्यक्तियों को आश्चर्य हुआ, किन्तु घर के व्यक्तियों के लिए यह कोई नई बात नहीं थी।

गाँव में ऐसी घटना इससे पहले कभी नहीं हुई थी। अतः सारा वातावरण उदासी से भरा हुआ था। सब व्यक्ति लाला जी के पुत्रों के समक्ष अपनी समवेदना प्रकट कर रहे थे। कुछ समय पश्चात् लाला जी ने शान्तिपूर्वक कहा—"जाने वाला तो चला गया। वह दो दिन के लिए अपनी लीला दिखाने आया था। जिस का था, उसने ले लिया। अब रंज करने से क्या लाभ? तुम सब इस घटना को भूल जाओ। दसूठन पर भोज के लिए जो पदार्थ तैयार किए गए हैं वे शीघ्र ही खराब हो जायँगे। अतः मेरे विचार से अब भोज

प्रारम्भ करना चाहिए और हमें मन में किसी प्रकार का दुःख नहीं लाना चाहिए ।"

लाला जी के इस कथन पर सब आमन्त्रित व्यक्ति दाँतों तले उँगली दबाने लगे । इतना लौह-हृदय व्यक्ति उन्होंने कभी नहीं देखा था जो पौत्र की मृत्यु के दिन उसके दुख को बिल्कुल भूल कर इस प्रकार भोज की बातें करे । पौत्र भी ऐसा वैसा नहीं—अत्यन्त प्रिय पौत्र, जिसके जन्म की प्रसन्नता ने उन्हें विभोर कर दिया था और जिसके दसूठन पर उन्होंने इतना अधिक खर्च करने की तैयारियाँ की थीं । फिर भी सब व्यक्ति समान नहीं होते । आमन्त्रित व्यक्तियों में से ऐसा हृदय-शून्य कोई भी नहीं निकला जो किसी के पौत्र की मृत्यु के दिन उसके यहाँ भोज खाने को तैयार हो जाता । हार कर लाला जी ने सब मिठाई मेहतरों को बाँट दी ।

उस दिन श्यामलाल मन्दिर में जाकर श्रीकृष्ण की मूर्ति के चरणों में सिर रख कर खूब रोया और कहने लगा—"भगवान ! मैंने पूर्व जन्म में कितने पाप किए थे जो तुम मुझ से इस प्रकार बदला ले रहे हो । मेरे भाग्य में यदि पुत्र नहीं लिखा था तो तुमने मुझे दिया ही क्यों ? और यदि दिया तो फिर छीन क्यों लिया ! मुझे इस प्रकार की मृग-मरीचिका में कब तक भटकाओगे भगवन् ? तुम तो पतितपावन कहे जाते हो । क्या मुझ पापी का उद्धार तुम नहीं करोगे ?"

श्यामलाल रोता रहा, किन्तु पत्थर के प्रभु उसी प्रकार मुस्कराते रहे । फिर भी श्यामलाल को लगा कि भगवान् के अधर हिले और वह उससे बोले—"घबराओ नहीं वत्स ! मैं तुम्हारा उद्धार अवश्य करूँगा ।"

इस कल्पना से श्यामलाल का सब उद्वेग शान्त हो गया और वह निर्मल चित्त से घर चला गया ।

पुत्र-जन्म और मरण की यह घटना श्यामलाल और लक्ष्मी देवी के जीवन की एक अंग बन गई। लक्ष्मी देवी ने इसके पश्चात् जिस पुत्र को भी जन्म दिया वह कुछ दिन अपनी कान्ति दिखा कर बुलबुले की भाँति विलीन हो गया। लाला जी की मृत्यु से पूर्व श्यामलाल के यहाँ चार पुत्रों ने जन्म लिया, किन्तु उनमें से एक भी जीवित न रहा। अब पुत्र-जन्म पर किसी को तनिक भी प्रसन्नता नहीं होती थी। सब को मालूम था कि यह सब दो दिन का मेला है। घर के सभी व्यक्ति ईश्वर के इस विचित्र खेल के कारण दुखी रहते थे। यदि लक्ष्मी देवी के कोई पुत्र न हुआ होता तो उन्हें इतना दुःख न होता जितना पुत्रों के होने और बाद में मरने का होता था। बहुत इलाज कराया गया, किन्तु कुछ भी लाभ न हुआ।

श्यामलाल के एक मित्र डाक्टर थे। जब उसने उनसे इस विषय की चर्चा की तब उन्होंने परामर्श देते हुऐ कहा—"इस बार जब बच्चा उत्पन्न हो तब उसे माता का दूध न पिला कर किसी धाय को रख लेना। कई बार स्त्रियों के दूध में विकार होता है और उसे पीने से बालक की मृत्यु हो जाती है। सम्भव है कि तुम्हारी पत्नी के दूध में भी कुछ विकार हो।"

श्यामलाल को यह बात जँच गई। उसने निश्चय कर लिया कि अगली बार पैदा होने वाले बच्चे को माता का दूध नहीं पिलाया जाएगा। सम्भव है कि इसी बहाने ईश्वर उसका उद्धार कर दे और उसका मुक्तिदाता पुत्र बच जाए। उसने पहले से ही एक अच्छी धाय का पता लगा कर मन में उसे रखने का निश्चय कर लिया।

इस बार फिर लक्ष्मी देवी को पुत्र हुआ। प्रारम्भ से ही उसे धाय का दूध दिया गया और माता के दूध से पृथक् रखा गया। एक महीना बीता, दो महीने बीते, धीरे-धीरे ग्यारह महीने हो गए, और लड़का

जीता-जागता रहा। श्यामलाल के हृदय की मुर्झाई बेल पुनः खिल उठी। अब उसे पूर्ण आशा हो गई कि उसका पुत्र जीवित रहेगा। उसने अपने डाक्टर मित्र को अनेक धन्यवाद दिए। उसके सुझाव के कारण ही उसका उजड़ा हुआ घर पुनः बस रहा था, किन्तु कहते हैं कि ईश्वर द्वारा किसी का सुख अधिक दिनों तक नहीं देखा जाता। वस्तुतः समस्त सांसारिक सुख प्रभु की माया द्वारा रचे जाते हैं और ईश्वर अधिक दिनों तक किसी व्यक्ति को व्यर्थ के माया-जाल में फँसाना नहीं चाहते। इसी कारण जब हम सुख में इतने लीन हो जाते हैं कि विश्व की असारता को भूल कर सब कुछ सत्य समझ बैठते हैं, तभी ईश्वर दुख-रूपी अमूल्य धन प्रदान कर हमें सचेत कर देते हैं। उस समय कहाँ तो हमें निर्विकार रहना चाहिए और कहाँ हम माया-जाल में फँसे हुए होने के कारण ऐसे अवसर पर ईश्वर को कोसने लगते हैं। यही हाल श्यामलाल का हुआ। अब तक वह सदैव श्रद्धापूर्वक प्रभु की अर्चना करता आया था, किन्तु उसकी आशाओं का केन्द्र, धाय द्वारा पलित पुत्र, भी जब एक वर्ष बाद धोखा दे गया तो उसने ईश्वर को जी भर कर कोसा और धर्म के प्रति एकदम उदास हो गया।

इसके पश्चात् श्यामलाल को जीवन से एक प्रकार की विरक्ति-सी हो गई। उसने सोचा—"जो होना होगा अब वह होता रहेगा। बच्चों को बचाने का कोई प्रयत्न नहीं करूँगा। उन्हें जीना हो जीएँ, मरना हो मरें। मेरे बचाने से कौन-सा कोई बच गया जो मैं व्यर्थ चिन्ता करूँ? यदि ईश्वर की मुझे नरक की आग में ही जलाने की इच्छा है तो इस पर मेरा क्या वश है? एक लड़की है—उसका विवाह कर सब धन-सम्पत्ति उसी के नाम लिखा दूँगा और स्वयं पत्नी के साथ विरक्ति का जीवन व्यतीत करूँगा। इस समय न मुझे संसार में रुचि है और न ईश्वर में! फिर स्वर्ग मिले अथवा नरक,

मेरे लिए सब बराबर हैं। जैसी पड़ेगी, सह लूँगा। इस जीवन में ही अब कौन-सा सुख है जो मैं नरक के जीवन से भय खाऊँ ?"

कुछ समय पश्चात् उसका एक घनिष्ठ मित्र—गोपाल चन्द्र एक वैद्य को ले कर आया और बोला—"श्याम ! वैद्य जी अपनी चिकित्सा-पद्धति के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अनेक स्त्रियाँ इनके कारण सन्तानवती हो गई हैं। यह कहते हैं कि प्रायः माता के रक्त-विकार के कारण बच्चे की मृत्यु होती है। मैंने इन्हें भाभी की बात बतलाई थी। यह कहते हैं कि इनकी दवाई से अवश्य लाभ होगा।"

श्यामलाल ने निराशापूर्ण मुद्रा से कहा—"रहने भी दो मित्र ! व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? जो ईश्वर को स्वीकार होगा, वही हो जाएगा। अब तक क्या कम इलाज कराए हैं जो और कसर रह गई ? उनसे क्या लाभ हुआ ? दुख और चिन्ता के अतिरिक्त और कुछ भी हाथ नहीं आया। मैं तो अब इसकी चिकित्सा से विरक्त हो चुका हूँ।"

गोपाल ने धैर्य बँधाते हुए कहा—"इस तरह नहीं सोचा करते श्याम ! विपत्ति किस पर नहीं आती ? इस प्रकार निराश नहीं होना चाहिए। जब तक श्वास तब तक आश ! मनुष्य को चाहिए कि प्रयत्न करना न छोड़े। तुम इन वैद्य जी की औषधि ले लो और जा कर भाभी को खिला दो। ईश्वर ने चाहा तो इस बार तुम्हारा बच्चा पूर्ण आयु को प्राप्त करेगा।"

बहुत समझाने पर श्यामलाल ने वैद्य जी से दवा ले कर लक्ष्मी देवी को खिला दी। इस बार लक्ष्मी देवी के गर्भ से एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। श्यमलाल यद्यपि पुत्र के लिए उत्सुक था, किन्तु फिर भी इस कन्या का भोला-भाला मासूम चेहरा उसे बड़ा भला लगा। उसने इतने दिनों बाद, फिर ईश्वर से प्रार्थना की कि वह उस कन्या को सुरक्षित रक्खें। उसकी देख भाल के लिए अत्यन्त सावधानी का प्रयोग

किया जाने लगा। श्यामलाल उसे अपने सामने दूध पिलवाता था। लक्ष्मी देवी से उसने कह दिया था कि वह कन्या को सदा अपने नेत्रों के सामने रखे। श्यामलाल सोचता था कि यदि यह कन्या जीवित रही तो लक्ष्मी देवी के आगे होने वाले बच्चों के जीवन की आशा भी हो जाएगी और इस प्रकार जब लड़का होगा तो वह भी जीवित रहेगा।

मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और ही है। ईश्वर ने श्यामलाल की प्रार्थना सुन ली और उसकी कन्या के जीवन को सुरक्षित रखा, किन्तु इसके बाद कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। लक्ष्मी देवी ने कुल तीन कन्याओं को जन्म दिया। इस प्रकार श्यमलाल की चार कन्याएँ हो गईं। एक पहली पत्नी से और तीन दूसरी से। यद्यपि पहले उसके चार पुत्र उत्पन्न हुए थे, तथापि उनकी अकाल मृत्यु हो जाने के कारण पुत्र की कामना अपूर्ण ही रही।

पिता और बड़े भाईयों की मृत्यु के बाद श्यामलाल ने पुत्र की चिन्ता करना बिल्कुल छोड़ दिया था। उसने सोचा कि जब पिता के साथ भाई भी ईश्वर ने छीन लिए तब और कुछ प्राप्त करने की अभिलाषा व्यर्थ है। अतः बाद में उत्पन्न होने वाली इन कन्याओं से भी उसे पूर्ण सन्तोष था। पुत्र-प्राप्ति के लिए उसने अपनी ओर से एक भी यत्न नहीं किया। छोटे भाई घनश्याम की भी दो कन्याएँ हो चुकी थीं। पुत्र की प्राप्ति उसे भी नहीं हुई थी। इस विषय में वे दोनों ही समान दुखी थे किन्तु चिन्ता करना दोनों ने ही छोड़ दिया था। वे दोनों एक-दूसरे को देख कर और अपने-अपने दुख-सुख की कह कर धैर्य धारण कर लेते थे। श्यामलाल की यह स्थिति निराशा के कारण हुई थी और घनश्याम ने उसकी स्थिति से सबक सीख लिया था। केवल पुत्र की चिन्ता में घुलते रहने की पुरानी परम्परा उन्हें अब व्यर्थ प्रतीत होने लगी थी संसार का विस्तृत कार्य-क्षेत्र सामने पड़ा था। अतः दोनों ने अपने-अपने कारोबार को सम्हाल लिया।

★

चार

जिस समय लाला जी की मृत्यु हुई उस समय श्यामलाल की बड़ी लड़की विद्या पन्द्रह वर्ष की थी। जिन दिनों की बात हम कह रहे हैं उन दिनों इससे अधिक आयु की अनब्याही लड़की घर में रखना समाज की दृष्टि में एक अपराध माना जाता था। जो व्यक्ति अपनी पुत्री अथवा बहिन को तेरह अथवा चौदह वर्ष की आयु में विवाह-सूत्र में बाँध देता था वह समाज में आदर और प्रशंसा की दृष्टि से देखा जाता था। जिस लड़की का विवाह पन्द्रह अथवा सोलह वर्ष की आयु में होता था उसके पिता अथवा भाई की समाज यदि प्रशंसा नहीं करता था तो निन्दा भी नहीं करता था। सत्रह, अठारह, उन्नीस और बीस वर्ष की कुमारी लड़की के पिता और भाई समाज की निन्दा और व्यंग्य के पात्र बनते थे और यदि किसी की बेटी अथवा बहिन बीस वर्ष से अधिक आयु की होते हुए भी कुमारी रहती थी तो उस व्यक्ति को उसके परिवार-सहित जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था और सारे गाँव में उसका हुक्का-पानी बन्द हो जाता था।

जब तक श्यामलाल के पिता जिवित थे तब तक उसने विद्या के विवाह की चिन्ता कभी नहीं की। उनके वंश की यह रीति चिरकाल से प्रचलित थी कि बड़ों के जीवित रहते छोटों को किसी बात की चिन्ता नहीं रखनी चाहिए। समस्त परिवार के बड़े-बड़े कार्यों की गुरु-चिन्ताएँ बड़े आदमियों के लिए होती थीं और छोटों का कार्य केवल यही था कि वे

निश्चिन्त रूप से अपने से बड़े व्यक्तियों की आज्ञाओं का पालन करते आए। श्यामलाल जानता था कि पिता जी जब चाहेंगे उसी समय अपनी पोती के विवाह की व्यवस्था कर लेंगे। उसे तो केवल उनकी आज्ञा का पालन-मात्र ही करना होगा। लाला जी अपने इस गुरु कर्त्तव्य के प्रति पूर्ण जागरूक थे। फिर भी उनकी आत्मा ने यह स्वीकार नहीं किया कि वह तेरह-चौदह वर्ष की अल्प आयु में ही उस कोमल बालिका को अपनी स्नेह-छाया से विलग कर पराए घर भेज दें। सोलह वर्ष से अधिक आयु की पोती का विवाह करना भी उन्हें पसन्द नहीं था। आखिर समाज की नाक हो कर नक्कू बनना वह कैसे स्वीकार कर सकते थे। उन्होंने सोचा कि ज्यों ही विद्या सोलह वर्ष की होने वाली होगी त्यों ही वह उचित घर-बार खोज कर उसका विवाह कर देंगे। धनी परिवार की सुन्दरी कन्या के लिए श्रेष्ठ वर मिलने में कुछ भी कठिनाई न होगी, ऐसा उनका विचार था।

फिर भी 'मेरे मन कछु और है कर्त्ता के कछु और।' मनुष्य अपने काल्पनिक जगत् में जो सोचता है, वास्तविक जगत् में वैसा नहीं हो पाता। मानव की कोमल कल्पना वास्तविकता की कठोर चट्टान से टकरा कर चूर-चूर हो जाती है। लाला जी के साथ भी ऐसा ही हुआ। अभी विद्या साढ़े चौदह वर्ष की ही थी कि उन्होंने उसके लिए वर खोजना प्रारम्भ कर दिया, किन्तु जितने लड़के देखे उनमें से कोई भी उन्हें अपनी पोती के योग्य नहीं जँचा। अब वह बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा कि यदि इसी प्रकार समय बीतता रहा और उन्हें विद्या के लिए उचित वर न मिला तो वह किस प्रकार उसका विवाह करेंगे? यदि शीघ्र ही उसका विवाह न किया तो जाति-बिरादरी के लोग उनके शुभ परिवार और उनकी भोली-भाली पोती पर उँगली उठायेंगे और आपस में उन की निन्दा करते फिरेंगे। दयालु ईश्वर ने लाला जी को ऐसी स्थिति का सामना करने से पूर्व ही उठा लिया और विद्या के विवाह का शुभ कार्य

उनके हाथों सम्पन्न नहीं हुआ। पिता तो मरे सो मरे, साथ में दोनों बड़े भाई भी मर गये। अब श्यामलाल ही परिवार में सबसे बड़ा रह गया। अन्य अनेक गुरु कार्यों के अतिरिक्त पुत्री के विवाह की चिन्ता भी अब अकेले उसी को करनी थी! एक वर्ष तक वह इस ओर ध्यान न दे सका क्योंकि काफी दिन बँटवारे आदि के झगड़ों में लग गये। फिर मृत पिता और भाइयों के श्राद्ध, वर्षी आदि की आयोजना भी करनी थी। इनके अतिरिक्त एक वर्ष तक पितृ और भ्रातृ शोक के कारण उसकी मानसिक स्थिति भी अच्छी न रही।

इस प्रकार विद्या सोलह वर्ष की हो गई और उसके विवाह की कोई व्यवस्था न हो सकी। निन्दक जनों की आकांक्षा-पूर्ति के लिए यह स्वर्ण अवसर था। जाति-बिरादरी वाले श्यामलाल और लक्ष्मी देवी पर उँगली उठाने लगे। पुरुषों को बहुत से कार्य करने होते थे। अतः उन्हें निन्दा करने का समय कम मिलता था, किन्तु स्त्रियों के पास तो समय ही समय था। उन्हें वार्तालाप का पर्याप्त मनोरंजक विषय प्राप्त हो गया। ज्यों ही तीन-चार स्त्रियाँ एकत्रित हो कर वार्तालाप करती थीं त्यों ही कोई न कोई किसी न किसी बहाने इस विषय की चर्चा चला देती थी। फिर तो उनके वार्तालाप का ऐसा रंग जमता था कि घर में चाहे बच्चे रोते हों, चाहे सब्ज़ी चूल्हे पर जल रही हो, किसी का वहाँ से उठने को मन नहीं करता था। यदि बीच में किसी का बच्चा आ कर रो-रो कर माँ को उठने के लिए बाध्य करता था तो वह विवश हो कर उठ तो जाती थी, किन्तु घर जाकर बच्चे पर इतना झुँझलाती थी कि मानो उसे कच्चा ही चबा जाएगी। बालक भी माँ के रुख को देख कर सहम कर चुप हो जाता था।

एक दिन चार स्त्रियाँ बैठी हुई इसी विषय पर वार्तालाप कर रही थीं। उनमें सत्तो की माँ भी थी। यह स्त्री श्यामलाल के बिल्कुल पड़ोस में ही रहती थी और निन्दा और चुगली में सर्वाधिक रुचि रखती थी। वास्तव में इस समय इस विषय की चर्चा भी उसी ने प्रारम्भ की

थी। अन्य तीन स्त्रियाँ पहले से बैठी हुई धर्म की महत्ता पर वार्तालाप कर रही थीं कि सत्तो की माँ भी वहाँ जा पहुँची। पहले-पहले कुछ देर तक तो वह भी उन स्त्रियों की हाँ में हाँ मिलाती रही और फिर एक दम अपने प्रिय विषय की बात छेड़ती हुई बोली—

"अरे रामू की माँ, तुम भी क्या बात कहती हो ? वे दिन अब गये जब लोग धर्म के नाम पर जान देते थे। अब तो कलजुग है कलजुग। लोग जान-बूझ कर अधर्म करते हैं। इस श्यामलाल को ही देख लो कैसा भोला बनता है, पर है पूरा पापी। जवान बेटी घर पर बैठी है पर अभी तक कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। ब्याह-शादी तो दूर की बात है बहन, अभी तो उसने सगाई भी नहीं की है।"

रामू की माँ तथा अन्य स्त्रियाँ सत्तो की माँ की बातों से काफी प्रभावित प्रतीत हुईं और रामू की माँ की बात का समर्थन करती हुई बोलीं—"तुम ठीक कहती हो, सत्तो की अम्मा ! वह तो सारी बिरादरी की नाक कटवा कर रहेगा !"

तीसरी स्त्री जो श्यामलाल की बिरादरी की थी, बोली—"बिरादरी की नाक क्यों कटने लगी ? उसी की कटेगी जो बुरे काम करेगा। बिरादरी ने किसी का क्या बिगाड़ा है ! दो-चार बरस की बात है। जो लड़की का ब्याह करना होगा तो कर लेगा नहीं तो साफ बिरादरी से निकाल दिया जाएगा। ऐसे अछूत अधर्मियों के यहाँ हुक्का-पानी कौन बिरादरी वाला पीने लगा ?"

अपनी बात का रंग जमता देख कर सत्तो की माँ प्रसन्न हो गई और बोली—"मैं तो कहूँ हूँ इसमें श्यामलाल का कोई कसूर नहीं है। वह तो बेचारा जोरू के कहने पर चलता है। यह सब उस लक्ष्मी की करतूत है। अपनी बेटी होती तो अब तक कब का कह-कहला कर ब्याह करवा देती। पराई माँ की बेटी है। सोचती होगी, मुझे क्या ? यह जाने और इसका बाप जाने। मैं क्यों चिन्ता करती फिरूँ ?"

रामू की माँ ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—"तुमने बिल्कुल ठीक कहा दीदी! दूसरों की लड़कियों की चिन्ता कौन करता है? चाहे लक्ष्मी लाख विद्या से अच्छा विवहार करे, किन्तु यह सब ऊपरी दिखावा है। भला जितना सनेह अपनी बेटियों से उसे है, उतना वह विद्या से काहे को करती होगी। अगर करती होती तो क्या सत्रह बरस की बेटी देख कर यों आँख पर पट्टी बाँध लेती। अपनी भी तो तीन बेटियाँ हैं। मैं भी यहीं हूँ और तुम भी यहीं हो। देख लेना जो उनका विवाह तेरह बरस की उमर में न हो जाए तो!"

सत्तो की माँ जैसे तड़प कर बोली—

"अरे! मैं कब कहती हूँ कि ऐसा नहीं होगा। बल्कि मैं तो कहती हूँ कि बारहवाँ लगते ही उनके हाथ पीले हो जाएँगे। विद्या बेचारी का क्या? चाहे बीस बरस की हो जाए। उसकी फिकर किसे है?"

चौथी स्त्री जो एक भले परिवार की बहू थी, अब तक चुपचाप बैठी हुई उनकी बातें सुन रही थी। वह लक्ष्मी देवी का बहुत सम्मान करती थी। उसे यह निन्दा अच्छी नहीं लगी, किन्तु फिर भी समय देख कर अपने मनोभावों को दबा कर सत्तो की माँ से बोली—"माँजी! तुम्हें तो वह बहुत मानती हैं। तुम्हीं क्यों न एक बार उन्हें जा कर समझा दो। यदि वह मान गईं और लड़की के हाथ पीले हो गए तो तुम पुण्य की भागी बनोगी।"

सत्तो की माँ कुछ क्रोधित हो कर हाथ नचाती हुई बोली—

"लो, घोर कलजुग! कल की लौंडियाँ हम बड़ी-बूढ़ियों को उपदेश देने चली हैं। अरे तो बहू! तू क्या समझती है कि मैंने उस मुँहजली को कभी समझाया नहीं? अगर वह मेरे कहे से मान गई होती तो मुझे क्या बावले कुत्ते ने काटा है जो सबके सामने बैठ कर उसकी बुराई करती। मैं किसी से डरती नहीं। यदि तुझे उसकी बुराई

खलती है तो हमारे बीच में मत बैठा कर। मैं तो सच बात कहूँगी। उससे बेसक जा कर कह दियो। क्या बिगाड़ लोगी तुम दोनों मेरा ?"

कहने को तो आवेश में सत्तो की माँ यह सब कुछ कह गई, किन्तु मन में पछताने लगी कि कहीं सचमुच ही इसने जा कर शिकायत कर दी तो क्या होगा ? वह सबकी चुगली करती अवश्य थी, किन्तु दिखाने के लिए सब की भली बनी रहना चाहती थी। उसने अनेक बार लक्ष्मी देवी को विद्या के विवाह को ले कर की गई उसकी और श्यामलाल की निन्दाओं से परिचित कराया था, किन्तु अपने नाम को उसके साथ न जोड़ कर दूसरों को ही निन्दक ठहराया था। प्रत्यक्ष में वह लक्ष्मी देवी और श्यामलाल को सर्वथा निर्दोष बतला कर भाग्य को दोषी ठहरा देती थी, किन्तु पीठ पीछे उन की खूब निन्दा करती थी। उसने सोचा कि यदि दीनू की बहू उसकी इन बातों को लक्ष्मी देवी से कह देगी तो उसकी सारी पोल खुल जाएगी। अतः बात बदल कर बोली—

"बहू ! अभी तुम बच्ची हो। तुम्हें हमसे अक्ल सीखनी चाहिए। आपस में चाहे लाख बातें करो, किन्तु किसी दूसरे को जा कर बताना और चुगली करना अच्छा नहीं होता। इससे आदमी का विसवास मारा जाता है।"

रामू की माँ भी लक्ष्मी देवी के सामने अपने को दूध की धुली दिखलाने की चेष्टा किया करती थी। दीनू की बहू की बातें सुन कर उसे भी भय हुआ कि कहीं यह उसकी चुगली न कर दे। अतः सत्तो की माँ की बात को ठीक ठहराती हुई बोली—"तुमने बिल्कुल ठीक कहा है दीदी। तुम जैसी समझदार स्त्री मिलनी कठिन है। तुम हर एक बात सोच समझ कर कहती हो। दीनू की बहू ! तू इनकी बात को गाँठ बाँध ले। यह कभी किसी को बुरी अक्ल नहीं देतीं।"

सत्तो की माँ अपनी प्रशंसा सुन कर फूली न समाई। उसने दीनू

की बहू की ओर गर्वपूर्ण नेत्रों से देखा। उसी समय रामू वहाँ आया और माँ का आँचल खींच कर घर चलने का आग्रह करने लगा। वह भूखा था और रोटी देने के लिए माँ को घर ले जाना चाहता था। माँ ने झुँझला कर कहा—"मुए दो घड़ी कहीं बैठने भी नहीं देते। जा खुद रोटी ले कर खा ले।"

पाँच वर्ष का हठी रामू यह सुन कर भी टस से मस न हुआ। मचल कर वहीं बैठ गया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। हार कर रामू की माँ को उठना पड़ा, किन्तु मन ही मन उसे रामू पर बड़ा क्रोध आ रहा था। उसके चले जाने के बाद रंग उखड़ गया। सबने अपने-अपने घरों की राह ली, किन्तु सत्तो की माँ सीधे लक्ष्मी देवी के घर की ओर चल दी। वह चाहती थी कि दीनू की बहू के पहुँचने से पहले ही वहाँ पहुँच जाए और आज की बातों में नमक-मिर्च लगा कर दीनू की बहू का नाम ले कर लक्ष्मी का मन उसकी ओर से फेर दे। यदि बाद में दीनू की बहू उसकी शिकायत भी करेगी तो लक्ष्मी देवी उसे झूठा समझ कर उसकी बातों पर पूरा ध्यान नहीं देगी।

जिस समय सत्तो की माँ श्यामलाल के घर पहुँची उस समय लक्ष्मी चौके में बैठी हुई रोटी बना रही थी और श्यामलाल सामने बैठ कर खा रहा था। लक्ष्मी सत्तो की माँ को देखते ही झट से तवा उतार कर उठी और आ कर उसके चरणों का स्पर्श किया। वह गाँव की बहू थी और गाँव की बड़ी-बूढ़ियों का आदर करना अपना परम कर्त्तव्य समझती थी। सत्तो की माँ ने प्रसन्न हो कर उसे आशीर्वाद दिया और प्रेमपूर्वक बोली—

"बहू! लाला जी को भोजन करा लो। फिर मेरे पास आना। मैं तब तक पास के कोठे में बैठ कर बच्चों का खेल देखती हूँ।"

लक्ष्मी देवी एक आज्ञाकारिणी सुशीला बहू की भाँति पुनः रोटी बनाने चली गई। ज्यों ही श्यामलाल भोजन कर के उठे त्यों ही वह

विद्या और उससे छोटी लड़की राधा को रसोई का काम सौंप कर स्वयं सत्तो की माँ के पास चली गई। उसने आ कर देखा तो सत्तो की माँ मुढ़िया पर बैठी हुई किसी विचार में लीन थी। पास ही लक्ष्मी की सबसे छोटी कन्या और गली के कुछ और बालक खेल रहे थे, किन्तु सत्तो की माँ का ध्यान इस ओर नहीं था। लक्ष्मी देवी ने चारपाई बिछाते हुए नम्रतापूर्वक कहा—

"इस पर बैठो अम्मा जी। मुढ़िया पर क्यों बैठ गई हो?"

सत्तो की माँ की विचार-धारा भंग हो गई। उसने ज्यों ही मुँह उठा कर ऊपर देखा तो लक्ष्मी देवी को चारपाई बिछा कर उसके पास खड़े हुए पाया। यह देख कर वह शीघ्रतापूर्वक बोली—

"अरे बहू! तुम कबसे वहाँ खड़ी हो? मैं तो बच्चों के खेल को देखने में इतनी लग गई कि तुम्हारा आना भी न जान सकी। बच्चे भी क्या भगवान् का रूप होते हैं बहू! इनको देख कर आदमी सब कुछ भूल जाता है।"

इस असत्य-भाषण को सुन कर लक्ष्मी देवी मन में मुस्कराई, किन्तु ऊपर से वैसा ही भाव दिखाती हुई बोली—"आओ अम्मा जी! खाट पर बैठ जाओ। यह मुढ़िया तुम्हारे योग्य नहीं है।"

सत्तो की माँ प्रसन्न हो कर चारपाई पर बैठती हुई बोली—"बेटी तुम कलयुग में सीता हो कर जन्मी हो। नहीं तो आजकल कौन बहू-बेटी इतने कायदे जानती है। इसी कारण तो तुम मुझे ऐसी अच्छी लगती हो कि मैं किसी से तुम्हारी बुराई नहीं सुन सकती। अब आज ही की बात लो। वह कल की छोकरी दीनू की बहू चली तुम्हारी बुराई करने। मैंने भी उसे ऐसा लताड़ा कि तुरन्त सहम गई और हाथ जोड़ कर माफी माँगने लगी।"

दीनू की बहू लक्ष्मी देवी की सखी थी और सदैव उसके हित

की बातें कहा करती थी। अतः यह सुन कर उसने कुछ अविश्वास के साथ कहा—"क्या बात हुई अम्मा जी ?"

सत्तो की माँ माथे पर बल डालती हुई बोली—"होना क्या था बहू! यह नासपीटे दुनियाँ वाले तनिक-सी बात का बतंगड़ बना लेते हैं। न किसी की भलमनसाहत देखते हैं न कुछ और। आज मैं और रामू की माँ बैठी हुई धर्म की बातें कर रही थीं, कि इतने में दीनू की बहू आ पहुँची और बोली—'माँ जी! हमारे मोहल्ले से तो धर्म उठ गया है। श्यामलाल को देखो जवान बेटी घर में बैठा रखी है। पापी कहीं का।' इस प्रकार की अनेक गालियाँ उसने मेरे बेटे को दीं।"

लक्ष्मी देवी को विश्वास था कि दीनू की बहू ऐसी बातें नहीं कह सकती। फिर भी उसने सोचा कि किसी न किसी स्त्री ने तो ये बातें कही ही होंगी। और किसी ने नहीं तो स्वयं सत्तो की माँ नें कह दी होंगी। उसे पति की बुराई सुन कर बड़ा दुःख हुआ। वह जानती थी कि उनका इसमें कोई दोष नहीं है। पहले वह पिता जी के भरोसे निश्चिन्त थे और अब एक वर्ष से कार्याधिक्य और पितृ तथा भ्रातृ-शोक के कारण विवाह की व्यवस्था नहीं कर सके थे। क्या दुनिया वाले किसी की मुसीबतों को नहीं पहचानते और केवल कीचड़ उछालने से ही मतलब रखते हैं? यह सोचते-सोचते लक्ष्मी देवी का चेहरा उदास हो गया।

सत्तो की माँ ने समझा कि उसको बात का यथेष्ट प्रभाव हुआ है और लक्ष्मी का मन दीनू की बहू के प्रति क्रोध से भर गया है। उसने उसके मौन का यही कारण समझा। अतः अपने विचारों के अनुसार उसके क्रोध को और भी चढ़ाती हुई बोली—

"केवल श्यामलाल के लिए ही कह कर रह जाती तो भी देखा जाता। उस छिनाल ने तो सारा कसूर तुम्हारा ही बतलाया। कहने लगी

कि सौतेली माँ को दूसरे की बेटी को क्या चिन्ता ? अपनी माँ होती तो अब तक कब का विवाह हो गया होता।"

यह सुन कर लक्ष्मी का दुःख और भी गहरा हो गया। उसने अब तक कभी विद्या को सौतेली लड़की नहीं समझा था। जितना स्नेह वह अपनी लड़कियों से करती थी, उतना ही विद्या से भी करती थी। अतः सत्तो की माँ की बात सुन कर उसके हृदय को चोट लगी। मौहल्ले की स्त्रियाँ उसके व्यवहार में कहीं कोई कमी न देख कर मन मार कर रह जाती थीं। वे चाहती थीं कि कभी लक्ष्मी विद्या को डाँटे फटकारे और वह जोर-जोर से रोए तो उन्हें आपस में यह कहने का अवसर मिले कि वह विद्या की सौतेली माँ है, किन्तु स्नेहमयी लक्ष्मी ने उन्हें यह अवसर १९ वर्ष के दीर्घ समय में एक बार भी नहीं दिया था। अब परिस्थितिवश विवाह में देर होने पर लोगों को उस पर कीचड़ उछालने का अवसर मिल रहा था। यह देख कर लक्ष्मी को बहुत दुःख हुआ। उसके चेहरे पर उदासी की रेखाएँ और भी स्पष्ट हो गईं। सत्तो की माँ यह देख कर मन में प्रसन्न हुई, किन्तु प्रत्यक्ष में बोली—

"इसी लिए तो मुझे उस पर गुस्सा आया। मैंने धमका कर कहा कि तुझे उस देवी की निन्दा करते हुए लज्जा नहीं आती ? इन्सान से नहीं तो भगवान् से तो डर ! जब उस बेचारी ने हमारे देखते कभी विद्या को कड़ा शब्द नहीं कहा तो उसे तू कैसे लाँछन लगाती है। मेरा यह रुख देख कर वह घबरा गई और हाथ जोड़ कर माफी माँगने लगी।"

लक्ष्मी समझ गई कि ये बातें सत्य नहीं हैं। फिर भी कोई न कोई उत्तर तो देना ही था। नहीं तो सत्तो की माँ समझती कि सौतेली लड़की के विवाह की बात सुन कर चुप्पी साधली है। परिवार की इज़्ज़त का ध्यान रखते हुए उसने किंचित् मिथ्या का आश्रय लेते हुए कहा—

"अम्मा जी ! इसमें दीनू की बहू का कोई दोष नहीं है। हमारा

ही दोष है। लड़की को सत्रहवाँ पूरा होने को आया और अभी तक उसका विवाह नहीं हुआ। दुनिया तो उँगली उठाएगी ही। वास्तव में परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी रहीं। पहले तो सब कुछ लाला जी के ऊपर छोड़ कर निश्चिन्त बैठे थे। उनकी मौत के छः सात महीने तक वैसे दुख के कारण कुछ न कर सके। अब दो-तीन महीनें से वर ढूँढ़ना शुरू किया है। बहुत से लड़के देखे हैं, पर अभी कहीं रिश्ता पक्का नहीं हुआ। बस इसी साल विवाह कर देंगे।"

अपने सब वारों को इस प्रकार खाली जाते देख कर सत्तो की माँ खिसिया गई। वह चाहती थी कि लक्ष्मी दीनू की बहू के प्रति क्रोध से भभक उठे और उसे खरी-खोटी सुनाए। उसे इस प्रकार शान्त देख उसकी सब आशाएँ मिट्टी में मिल गईं। यह जान कर भी उसे बड़ा दुख हुआ कि विद्या का विवाह शीघ्र ही हो जाएगा और उसका प्रिय वार्तालाप का विषय भी इस प्रकार समाप्त हो जायेगा। अनमनी-सी हो कर उठते हुए बोली—"अच्छा तो बहू, अब चलूँ।"

लक्ष्मी आदरपूर्वक बोली—"बैठो भी अम्मा जी चली जाना। अभी कौन तुम्हें आए बहुत देर हो गई?"

सत्तो की माँ की अब बैठने की इच्छा नहीं रह गई थी। अतः चलते-चलते बोली—"फिर आऊँगी बहू सत्तो रोता होगा।"

लक्ष्मी ने सत्तो की माँ के चरण छुए और वह चली गईं, किन्तु लक्ष्मी उसी स्थान पर आ कर पुनः बैठ गई। उसका मन दुख से भरा हुआ था। उसी समय विद्या आई और उससे भोजन करने का आग्रह करने लगी। लक्ष्मी उसके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरती हुई बोली—

"जाओ बेटी, तुम सब मिल कर खा-पी लो। मेरी रोटियाँ उठा कर रख दो। अभी मुझे भूख नहीं है। ठहर कर खा लूँगी।

विद्या माता की आज्ञा का पालन करने चली गई। उसे देख कर

लक्ष्मी का मन भर आया, सोचने लगी कि कितनी भोली-भाली लड़की है। कहने को सत्रह वर्ष की हो गई है, किन्तु इकहरे बदन की होने के कारण अभी तेरह-चौदह वर्ष की ही लगती है। फिर भी दुनिया इसके पीछे पड़ी हुई है। सब यही चाहते हैं कि यह भोली बालिका शीघ्र ही इस घर से चली जाए। विद्या से पृथक होने की कल्पना कर लक्ष्मी और भी दुखी हो गई, किन्तु मन को समझाती हुई सोचने लगी—"आखिर विवाह तो करना ही है। जैसे अब किया वैसे ही कुछ दिन बाद किया। फिर अभी ही क्यों न कर दिया जाए, जिससे दुनिया का मुँह भी बन्द रहे। कन्या तो अखिर पराया धन है। उसका मोह करने से कोई लाभ नहीं होता। एक न एक दिन स्नेह के बन्धन टूटेंगे ही। फिर उन्हें अधिक दृढ़ बनाने से क्या लाभ ? मैं आज ही उनसे जोर दे कर कहूँगी कि विद्या का विवाह शीघ्र कर डालें।"

वह इन्हीं विचारों में लीन थी और हथेली पर चिबुक रखे बैठी थी कि इतने में श्यामलाल अन्दर आए। लक्ष्मी से एक विशेष बात कहने आए थे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह विचार मग्न है तब वह लौटने लगे। उसी समय लक्ष्मी की विचार-धारा भंग हुई तो उसने लौटने को उद्यत पति को देखा। उन्हीं से मिलने की बात तो वह भी उस समय सोच रही थी। अतः शीघ्रतापूर्वक बोली—"अरे जरा ठहरो ! एक बात तुमसे कहनी है। आकर लौट क्यों रहे हो ?"

श्यामलाल के उठे हुए कदम रुक गए। उन्होंने लक्ष्मी की मुढ़िया के समीप बिछी हुई चारपाई पर बैठते हुए कहा—"मैं भी तुमसे एक आवश्यक बात कहने आया था। तुम न जाने किस सोच में बैठी थीं। इसी लिए मैं लौट रहा था। बड़े-बूढ़ों का कथन है कि किसी की निद्रा अथवा विचार-धारा भंग करना पाप है।"

पति के इन विचारों को सुन कर लक्ष्मी मुस्कराई और बोली—"बड़े दार्शनिक होते जा रहे हो जी ! अच्छा यह तो बताओ कि क्या बात कहने आए थे।"

अँगूठे के पास वाली उंगली ऊपर उठा कर लक्ष्मी की ओर संकेत करते हुए श्यामलाल ने कहा—"पहले तुम बताओ कि क्या सोच रही थीं ?"

लक्ष्मी तुरन्त बोली—"वाह मैं पहले क्यों बताऊँ ? पहले तुम बताने आए थे। यह तो तुमने पीछे देखा कि मैं कुछ सोच रही हूँ। इस लिए पहले तुम्हें ही बताना चाहिए।"

इस तर्क के सामने श्यामलाल निरुत्तर हो गए और बोले—"तुम जीती, हम हारे। बस अब तो तुम खुश हो। पहले हम ही बतला देंगे। इसमें अन्तर ही क्या पड़ता है ?"

लक्ष्मी ने पति की ओर अत्यन्त उत्सुक दृष्टि से देखते हुए कहा—"तो फिर बताओ।"

श्यामलाल ने एकदम गम्भीर हो कर कहा—

"असल में मैं तुम्हें एक शुभ समाचार सुनाने आया था। जिसका सम्बन्ध विद्या से है।"

लक्ष्मी की आँखे चमक उठीं। प्रसन्न हो कर बोली—"कौन-सा ?"

श्यामलाल ने उसी प्रकार गम्भीरता से कहा—

"गोपाल को तो तुम जानती हो। मेरा बचपन का मित्र है। उसने अपने एक मित्र के लड़के से विद्या के विवाह के लिए चर्चा की है। लड़का देखने-सुनने में अच्छा है और दुकान करता है। लड़के का पिता अर्थात् गोपाल का मित्र अभी जीवित है। घर में लाखों की सम्पत्ति है और वह अकेला लड़का है। अब तुम बताओ कि तुम्हारी क्या राय है ?"

लक्ष्मी को लगा कि जिस चिन्ता के बोझ से वह उस समय दबी हुई बैठी थी, वह एकाएक उतर गया है। अतः वह भारमुक्त की भाँति आश्वस्त हो कर बोली—"जब तुमने भलि-भाँति देख-भाल लिया है

तो सब ठीक ही होगा। मेरी राय तुम से भिन्न कैसे हो सकती है ? हाँ, यह बतलाओ कि लड़के की आयु कितनी है ?"

"यही कोई पच्चीस-छब्बीस के लगभग होगी।" श्यामलाल ने कुछ अनुमान करते हुए कहा।

यह सुन कर लक्ष्मी ने संतोषपूर्ण मुद्रा में उत्तर दिया—

"बस, फिर ठीक है। हमारी विद्या सत्रह वर्ष की है ! वह पच्चीस वर्ष का है। आठ साल का फर्क है, सो ठीक है। आमतौर से इतना ही फ़र्क होता है। एक-आध साल और कम होता तो ज़रा और अच्छा होता। पर अब भी बुरा नहीं है। अच्छी जोड़ी रहेगी। अब तुम जल्दी ही सगुन देख कर लड़का रोक दो। एक महीने बाद बसन्त के दिन सगाई दे देना। फिर इसी साल ब्याह रचा कर छुट्टी पाओ।"

श्यामलाल ने माथे पर बल डालते हुए कहा—"ऐसी क्या जल्दी है ? सत्रह वर्ष की हो गई तो क्या हुआ ? देखने में तो चौदह वर्ष की ही लगती है। अभी सगाई कर देते हैं। अगले साल आराम से विवाह करते रहेंगे।"

लक्ष्मी पुनः चिन्तित हो कर बोली—

"यही तो तुम नहीं समझते। मर्द तो देख कर आयु का अनुमान करते हैं. किन्तु औरतें एक-एक दिन का हिसाब रखती हैं। यहाँ की सभी औरतों को मालूम है कि विद्या सत्रह वर्ष की हो चुकी है। सब ने हमारी निन्दा करनी प्रारम्भ कर दी है। अभी सत्तो की माँ आई थी। यही कह रही थी कि कोई हम दोनों को पापी बताता है और कोई विधर्मी।"

श्यामलाल ने क्रोध-मिश्रित आश्चर्य से कहा—"अच्छा ! कौन है वे स्त्रियाँ ?"

लक्ष्मी पति के भावों को पहचान कर पुनः बोली—"केवल इतना

ही होता तो भी देखा जाता। अब तो नौबत यहाँ तक आ पहुँची है कि सौतेली माँ होने के कारण सारा दोष मेरे मत्थे ही मढ़ दिया जाता है। अब तुम्हीं सोचो कि विवाह में देर करने का क्या परिणाम होगा।"

श्यामलाल ने क्रोध से कहा—"तुम उनकी परवाह ही क्यों करती हो ? या तो कुछ सुना ही मत करो और यदि विवश हो कर सुनना पड़ भी जाए तो इस कान से सुनो और उस कान से उड़ा दो।"

लक्ष्मी पति को समझाती हुई बोली—"तुम मर्द हो कर औरतों की बातें नहीं जान सकते। मोहल्ले में रह कर इस प्रकार की उपेक्षा से काम नहीं चल सकता। भला जल में रह कर मगर से बैर करने से क्या लाभ ? फिर इस से हम पर फर्क ही क्या पड़ता है ? विद्या सयानी हो गई है। विवाह तो करना ही है। जैसे अब किया वैसे ही एक साल पीछे किया। दुनिया की बुराई अपने सिर लेने से ही क्या लाभ ?"

श्यामलाल ने शान्त हो कर कहा—"कहती तो तुम ठीक हो, पर अभी मेरे घाव नहीं भरे। अभी पिता जी और भाइयों को मरे मुश्किल से एक साल हुआ है। पाँच-छः महीने और बीत जाते तो दुख कुछ पुराना पड़ जाता। मुझे जो खुशी पाँच-छः महीने बाद पुत्री का विवाह करने में होगी वैसी अभी नहीं हो सकेगी।"

लक्ष्मी ने बात को सँभालने की चेष्टा करते हुए कहा—"बात तो तुम्हारी ठीक है, पर इस अवसर पर समय का तकाज़ा मान कर दुख को भुला देना ही अच्छा है। जो गए सो गए। अब लौट कर तो वे आ पाएँगे नहीं। यह सोच कर मन को समझाने का प्रयत्न करो और शुभ सायत देख कर विद्या का विवाह इसी वर्ष कर डालो। मैं परिवार की इज़्ज़त की रक्षा के लिए ही इस बात पर इतना ज़ोर दे रही हूँ।"

श्यामलाल ने कुछ अनिश्चिन्तता अनुभव करते हुए कहा—"अच्छा, फिर जैसी तुम्हारी इच्छा। कल सवेरे जा कर रिश्ता पक्का कर आऊँगा।

हृदय पर पत्थर रख कर इसी वर्ष विवाह भी कर देंगे।"

लक्ष्मी की प्रसन्नता पुनः लौट आई। उसने सोचा कि चलो निन्दा करने वालों के मुँह पर तो सदा के लिए ताला लग जाएगा। उसने उसी दिन से विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। बहुत-सी चद्दरें और मेज़-पोश छपवाए। कुछ विद्या और छोटी लड़कियों को काढ़ने के लिए दे दिए और कुछ स्वयं काढ़ने प्रारम्भ कर दिए। मोहल्ले की स्त्रियाँ आती थीं और आश्चर्यचकित हो कर इस परिवर्तन को देखती थीं। वे ईर्ष्यालु स्त्रियाँ जो इस परिवार के जाति से बहिस्कृत होने के स्वप्न देखा करती थीं, मन ही मन बहुत दुखी होती थीं, किन्तु लक्ष्मी देवी के सामने प्रसन्नता ही प्रकट करती थीं।

जब श्यामलाल विवाह पक्का कर के लौट आया तब लक्ष्मी देवी ने अवसर पा कर पूछा—"समधी जी ने कुछ ठहर-ठहराव तो नहीं किया!"

श्यामलाल ने उत्तर दिया—"एक नम्बर लालची आदमी है। उसे भय था कि कहीं नई माँ सोतेली लड़की को कुछ भी दहेज न दे। अतः उसने बीस तोले सोना और पन्द्रह हज़ार नकद रुपए ठहराए हैं।"

लक्ष्मी ने मुस्करा कर कहा—"बस केवल इतना ही! फिर भी तुम उसे उन्हें लालची ठहरा रहे हो। इससे तो अधिक ही हम अपनी विद्या को देंगे। इतने वर्षों बाद आ कर एक लड़की का विवाह होने जा रहा है। कंजूसी क्या करनी, मन खोल कर खर्च करेंगे।"

श्यामलाल ने मन ही मन पत्नी की उदारता की सराहना की। शुभ साइत में विद्या का विवाह हो गया। श्यामलाल ने गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को आमन्त्रित किया और प्रत्येक घर में मिठाई भेजी। बरातियों का इतना सत्कार किया गया कि वे श्यामलाल का गुण-गान करते हुए लौट गए। वर और उसके पिता भी पूर्णतः सन्तुष्ट हो कर गए। उन्हें

उनकी आशा से अधिक धन मिला था। विदा होते समय विद्या लक्ष्मी देवी से लिपट कर खूब रोई। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसकी सगी माँ ही उससे वियुक्त हो रही हो। लक्ष्मी भी खूब रोई किन्तु संसार की अनश्वर रीति का ध्यान कर उसने धैर्य धारण किया और विद्या को भी समझा-बुझा कर शान्त किया। इस प्रकार विद्या ससुराल चली गई।

पाँच

विद्या दो दिन बाद ससुराल से लौट आई। चार-पाँच दिन तक वह दुखित-सी रही। लक्ष्मी ने उससे बहुत पूछा, किन्तु उसने अपने दुख का कोई कारण नहीं बताया। धीरे-धीरे उसकी उदासी दूर होती गई और कुछ दिन बाद वह फिर पहले की भाँति अपनी बहनों से हिल-मिल गई। यह देख कर लक्ष्मी ने सन्तोष की साँस ली। विद्या का विवाह करके जो प्रसन्नता उसे हुई थी, उसे दुखी देख कर वह प्रायः नष्ट हो गई थी। वह सोचती थी कि पता नहीं विद्या को कौन-सा दुख मिला होगा जो वह इतनी उदास रहती है। देखने में तो घर-वर सभी अच्छे हैं, भीतर का हाल ईश्वर जाने। परमात्मा करे उसे ससुराल में कोई दुख न मिले नहीं तो लोग कहेंगे कि सौतेली माँ ने पराई बेटी को बिना देखे कुएँ में धक्का दिलवा दिया। इसी लिए विद्या को ससुराल से लौटने पर दुखी देख कर लक्ष्मी का मन शंका से भर उठा था, किन्तु जब कुछ दिन बाद विद्या पुनः प्रकृतिस्थ हो गई तो उसकी यह चिन्ता दूर हो गई।

अभी विद्या को मायके आए हुए एक मास ही हुआ था कि उसको ले जाने के लिए ससुराल से पत्र आ गया। लक्ष्मी के कहने पर श्यामलाल ने उत्तर में यह निवेदन किया कि अभी उसे दो महीने तक और न बुलाएँ, किन्तु इस विषय में वहाँ से विवशता का पत्र आया और दो दिन बाद विद्या का पति उसे ले आने ने लिए आ गया। लक्ष्मी और श्यामलाल ने उसे बहुत समझाया कि वह अभी कुछ देर

विद्या को और छोड़ दे, किन्तु उसने एक न सुनी। यह देख कर श्यामलाल और लक्ष्मी को बड़ा दुख हुआ कि उनका जामाता अपने हठ के सामने उनकी इच्छा को तृणवत् समझ रहा था। इसके अतिरिक्त लक्ष्मी ने देखा कि पूर्णचन्द्र अर्थात् उनका दामाद अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था। अब लक्ष्मी को विद्या के दुख का रहस्य समझ आ रहा था, किन्तु अब क्या हो सकता था ? विवाह तो हो चुका था और शास्त्रों के अनुसार पति अन्धा, लँगड़ा, क्रोधी, उज्जड कैसा भी हो भारतीय नारी के लिए देवता ही माना जाता है। अब तो आवश्यकता इस बात की थी कि विद्या अपने भाग्य को पहचान कर अधिक दुखी न हुआ करे और अवसर पा कर अपने पति को सुधारने का प्रयत्न किया करे। लक्ष्मी ने निश्चय कर लिया कि वह विद्या को इस विषय में एकान्त में समझाएगी।

जब विद्या के जाने का अवसर आया तो लक्ष्मी प्यार से उसका हाथ पकड़ कर एक कमरे में ले गई और एक चारपाई पर उसे अपने समीप बैठा लिया। फिर वह स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली—"बेटी तुम हमारे वंश की एक आदर्श कन्या हो। तुमने सदा अपने पिता जी की और मेरी आज्ञा का पालन किया है। दुनियाँ की आँखों में मैं तुम्हारी सौतेली माँ रही, किन्तु तुमने मुझे कभी ऐसा नहीं समझा, अपितु सगी माँ से भी अधिक मेरा सम्मान किया। इसी अधिकार के बल पर मैं आज तुम्हें कुछ उपदेश दे रही हूँ और मुझे विश्वास है तुम उसके अनुसार ही अपने जीवन में कार्य करोगी।"

विद्या सिर नीचा किए नाखूनों से ज़मीन कुरेद रही थी। जाने का समय निकट होने के कारण वह अत्यन्त उदास हो गई थी। लक्ष्मी समझ गई कि इस समय वह कोई उत्तर नहीं देगी, किन्तु उसके निर्दोष चेहरे से स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि लक्ष्मी का विश्वास मिथ्या नहीं था। अतः उसने अपनी बात प्रारम्भ करते हुए कहा—

"देखो बेटी, जिन दिनों तुम्हारा विवाह होना चाहिए था, उन दिनों दुर्भाग्य से तुम्हारे दादा और परिवार के अन्य मुख्य व्यक्तियों की मृत्यु हो गई। यह तुम्हें स्वयं ही मालूम है। इस प्रकार तुम्हारा विवाह एक साल रुका रहा, किन्तु लोगों को किसी के दुःख से मतलब थोड़े ही होता है। वे तो अपने काम से काम रखते हैं। यही हाल उन्होंने हमारे साथ किया और व्यर्थ ही तुम्हारे विवाह की तनिक-सी देर के कारण हमारे वंश की निन्दा होने लगी। यह तुम्हारे पिता जी को और मुझे सहन नहीं हो सका और उन्होंने अपनी समझ में अच्छा घर-वर देख कर शीघ्र ही तुम्हारा विवाह कर डाला। यहाँ तक तो सब ठीक ही हुआ, किन्तु तुम्हारे उतरे हुए चेहरे को देख कर हमें लगता है कि कहीं न कहीं कुछ कमी अवश्य हुई है। जब तुम ससुराल से आई थीं तब भी अत्यन्त उदास थीं और चार-पाँच दिनों तक उदास रही थीं। अब भी जब से लाला तुम्हें लेने के लिए आए हैं तभी से तुम अत्यन्त दुखी हो। क्यों ठीक है न ?"

विद्या से किसी प्रकार के उत्तर की आशा करना व्यर्थ था। वह तो जैसे जड़वत हो गई थी। लक्ष्मी ने ही पुनः कहा—

"मुख से चाहे तुम कुछ न कहो, किन्तु तुम्हारा चेहरा तुम्हारे हृदय की सारी कथा सुना रहा है। मैं जानती हूँ कि उस परिवार में धन का कोई अभाव नहीं है। तुम्हारे श्वसुर ने तुम्हें जितना ज़ेवर चढ़ाया है, उतना हरिपुर में शायद ही किसी लड़की को किसी के श्वसुर ने चढ़ाया होगा। जितनी साड़ियाँ तुम्हें ससुराल से मिली हैं उतनी मैंने अब तक के अपने जीवन में कभी किसी लड़की को मिलते नहीं देखीं।"

लक्ष्मी एक क्षण विद्या के मुख के भाव को देखने के लिए रुकी, किन्तु उसे निराशा ही हुई। अपने ज़ेवर और कपड़ों की बात सुन कर भी उसके मुख पर प्रसन्नता की झलक तक न आई। वह उसी प्रकार

नीचे की ओर देखते हुए उदास भाव से बैठी रही। लक्ष्मी ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—

"बेटी, मैं जानती हूँ कि धन ही सब कुछ नहीं होता। धन से और सब वस्तुएँ खरीदी जा सकती हैं, किन्तु किसी का मन, किसी का सच्चा स्नेह और किसी की सच्ची सहानुभूति कभी नहीं खरीदी जा सकती। जो व्यक्ति समझता है कि वह धन के बल पर सब कुछ कर लेगा, यहाँ तक कि किसी का हृदय भी जीत लेगा वह भ्रम का शिकार है और इसके अतिरिक्त वह स्वार्थी है, पाखण्डी है, दुष्ट है और······।"

अभी लक्ष्मी न जाने आवेश में क्या-क्या कहती कि सहसा विद्या की ओर दृष्टि जाने पर उसकी ज़बान बन्द हो गई। उसने देखा तो विद्या फूट-फूट कर रो रही थी। उसका मातृ-स्नेह उमड़ पड़ा। उसने उठ कर विद्या को हृदय से लगा लिया और बोली—

"रोओ मत बेटी! इससे मुझे और भी दुख होता है। शायद मेरी बातों ने तुम्हारी दुखती हुई रग को छेड़ दिया है। मैं जानती हूँ कि तुम्हें अच्छा पति नहीं मिला। जैसा व्यावहार उसने हमारे साथ किया है उससे स्पष्ट हो गया है कि दो दिन ससुराल में उसने तुम्हारे साथ कैसा व्यावहार किया होगा। खैर, जाने दो इन बातों को, इससे तुम्हें और भी दुख होगा। मैं तो केवल तुम्हें यही उपदेश देना चाहती हूँ कि भाग्य की बात सोच कर तुम अधिक दुखी न होना। भारतीय नारी को चाहे कैसा ही पति मिले, वह उसके लिए देवता के समान माना जाता है। तुम भी इस आदर्श को सदा अपने सामने रखना। यदि सम्भव हो तो उन्हें सुधारने का प्रयत्न करना, किन्तु उनकी उपेक्षा अथवा अवज्ञा कभी न करना। बस यही मेरा कहना है।"

कुछ क्षण रुक कर लक्ष्मी ने पुनः कहा—

"तुम्हारा पिता गरीब नहीं है। यदि चाहे तो आयु भर तुम्हारा

यहीं निर्वाह हो सकता है, किन्तु इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। लोग व्यर्थ ही निन्दा करते फिरेंगे। तुम पर अनेक लांछन लगाए जाएँगे, जिसे हम में से कोई भी सहन नहीं कर सकेगा। पति के घर लड़की चाहे किसी प्रकार रहे, लोग उसे सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु पिता के घर लड़की का निर्वाह कठिन हो जाता है। इसी लिए बड़े-बूढ़ों ने कहा है कि नौकर घर में दस खप जाते हैं पर बेटी एक भी नहीं खपती।"

विद्या अभी तक रोए जा रही थी। लक्ष्मी अब तक भरे हुए मन से बातें कर रही थी, किन्तु अब उसकी भी आँखें बरस पड़ीं। वह आँसू पोंछ कर विद्या को आशीर्वाद देती हुई बोली—

"जाओ बेटी, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। तुम सदा अपने कर्त्तव्य-पथ पर चल कर अपने वंश का नाम उज्ज्वल करना।"

पूर्णचन्द्र विद्या को ले कर चला गया और उसी दिन से लक्ष्मी की प्रसन्नता भी नष्ट हो गई। उसे रह-रह कर यही दुःख होता था कि उसी की जल्दबाजी के कारण विद्या का जीवन नष्ट हो गया। उसके मानस-चक्षुओं के समक्ष बार-बार विद्या का भोला-भाला निर्दोष चेहरा घूम जाता था। वह दिन में एक बार जरूर रो लेती थी और सायंकाल को ईश्वर की प्रतिमा की अर्चना करते हुए कातर वाणी में कहा करती थी—

"हे प्रभु! उस भोली बालिका ने ऐसा कौन-सा पाप किया था जो उसे इस प्रकार इस आयु में कष्ट भोगना पड़ रहा है? हे दयालु! मेरे जितने भी पुण्य हैं, सब उस लड़की को दे दो और किसी प्रकार उसके जीवन को सुखी करो।"

इसी प्रकार दिन बीतते गए। अभी विद्या को गए एक महीना भी न हुआ था कि उसके श्वसुर की मृत्यु का समाचार आ गया। सब ने बड़ा शोक मनाया। श्यामलाल दामाद और पुत्री को सान्त्वना देने के लिए

बनारस गया। वह सोच रहा था कि विद्या से अधिक दुख पूर्णचन्द्र को हुआ होगा और इस समय वह शोक की प्रतिमा बना हुआ होगा। अतः उसने सोचा कि वह वहाँ जाने पर जग की रीति समझा कर उसे सान्त्वना देगा और इस प्रकार उसके दुख के भार को हल्का कर देगा। दुख तो विद्या को भी कम नहीं होगा, क्योंकि आखिर वे उसके श्वसुर थे जिन्हें वह मेरे समान ही मानती थी, किन्तु पूर्णचन्द्र की बात दूसरी है। भाइयों के नाम पर उसका कोई नहीं है। अतः पिता के मरने से वह बिल्कुल अकेला रह गया है। मैं उसे अनेक ऊँच-नीच समझा-बुझा कर शान्त करूँगा तब जा कर उसे थोड़ी-सी शान्ति मिलेगी। इस प्रकार मार्ग में पूर्णचन्द्र के विषय में सोचते-सोचते श्यामलाल बनारस पहुँचा।

पूर्णचन्द के घर जाने पर श्यामलाल ने देखा तो दृश्य दूसरा ही था। उसने बड़े ध्यान से अपने दामाद के चेहरे का अध्ययन किया, किन्तु वहाँ उसे दुख की तनिक-सी झलक भी नहीं मिली। जिसे समझाने के लिए वह इतनी दूर से चल कर आया था वह तो पहले ही समझा हुआ था। श्यामलाल ने सोचा कि क्या पूर्णचन्द्र को पिता के मरने का तनिक भी दुख नहीं है? ऐसा कैसे हो सकता है? मेरे पिता भी तो मरे थे। ८० वर्ष की पकी हुई आयु थी। उस समय बीमारी में न मरते तो अपनी मौत एक-दो वर्ष बाद भी मरते। फिर भी मुझे कितना दुख हुआ था कि छः महीने तक भली-भाँति सो नहीं सका था और भोजन तो पूरे एक वर्ष तक मुझे अच्छा नहीं लगा था। फिर पूर्णचन्द्र के पिता तो अभी कुल पचपन वर्ष के ही थे। अभी कौन-सा उनके मरने का समय था? यदि उन्हें अचानक हैज़ा न हो गया होता तो शायद अभी बीसियों वर्ष जीवित रहते। फिर पूर्णचन्द्र के तो वही एकमात्र सहारे थे। माँ तो बेचारे की बचपन में ही मर गई थी। पिता ने ही अब तक माँ और बाप, दोनों के कर्तव्य का पालन किया था। विद्या का सम्बन्ध करते समय जब मैंने अपने मित्र से पूर्ण और उसके पिता के विषय में पूछ-ताछ की

थी तो उसने मुझे बतलाया था कि बाबू जी पूर्ण को अपने प्राणों से भी अधिक चाहते थे और उसकी बड़ी से बड़ी माँग भी पूरी करते थे। फिर ऐसे स्नेह-वत्सल पिता की मृत्यु पर पुत्र को शोक न हो तो महान् आश्चर्य की बात है! अवश्य ही मुझे भ्रम हुआ है। यह आवश्यक नहीं है कि हृदय की प्रत्येक बात चेहरे पर झलक जाए। पूर्ण के हृदय में पिता के मरने का अत्यधिक दुख है, किन्तु वह लोगों के सामने इसे प्रकट नहीं करना चाहता। इसी कारण उसने अपने चेहरे को निर्विकार बनाया हुआ है। ठीक भी है, क्योंकि रहीम ने कहा है—

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुन अठिलहैं लोग सब, बाँट न लैहैं कोय॥

किन्तु मैं तो व्यथा पर हँसने नहीं, अपितु उसे बँटाने ही आया हूँ। अतः मुझे चाहिए कि ठीक बात का पता लगाऊँ। यह सोच कर श्यामलाल पूर्णचन्द्र को एकान्त में ले गया और स्नेहपूर्वक बोला—

"बेटा, जब से तुम्हारे पिता की मृत्यु का पत्र हरिपुर पहुँचा, तब से विद्या की माता जी और मैं अत्यन्त दुखी हैं। दुख मरने वाले का इतना नहीं है, जितना तुम्हारी ओर से है। ईश्वर ने तुम्हें कोई भाई भी नहीं दिया जिससे तुम्हें कुछ सान्त्वना मिलती। खैर, अब जो होना था सो हो गया। मैं तुम्हें यही समझाने आया हूँ कि तुम अधिक दुख न करना। मुझे अपना पिता ही समझना और जब कभी आवश्यकता पड़े मुझे तार दे देना। मैं उसी समय आ जाऊँगा।"

पूर्णचन्द्र ने दम्भपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा—

"आपकी कृपा के लिए धन्यवाद लाला जी, किन्तु आप निश्चिन्त रहिए। मुझे अभी किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मेरे पास इतना धन है कि मैं आयु भर बैठ कर खा सकता हूँ। धन के अतिरिक्त मनुष्य को और किसी प्रकार की सहायता की आवश्यकता

नहीं होती। रही पिता जी की मृत्यु की बात सो उसके लिए मुझे विशेष दुख नहीं है। वृद्ध तो हो ही चुके थे। आज नहीं तो कल उन्हें मरना ही था। अतः मैंने सोच लिया है कि दुखी होना व्यर्थ है। जीना-मरना सब भाग्य के हाथ की बात है। फिर मनुष्य क्यों दुखी हो कर अपनी आयु को क्षीण करे !"

इस उत्तर के बाद श्यामलाल ने कुछ कहना व्यर्थ समझा। जो बातें उन्हें कहनी चाहिएँ थीं उन्हें पूर्णचन्द्र स्वयं ही कह रहा था। फिर उनका बोलना व्यर्थ था। उन्हें दामाद की निर्ममता पर दुख हुआ। जिस पिता ने पाला-पोसा, बड़ा किया उसकी अकाल मृत्यु पर ही जिस व्यक्ति को दुख नहीं हुआ वह औरों की मृत्यु पर क्या शोक करेगा ? श्यामलाल को लगा कि उसका दामाद स्वार्थी, दम्भी और निर्मोही है। ऐसे व्यक्ति के साथ उसकी कुसुम-सी सुकुमारी कन्या का निर्वाह किस प्रकार होता होगा ? यह उसने आज पहली बार सोचा। बेचारी अत्यन्त दुखी रहती होगी। हे ईश्वर ! मैंने जल्दी में यह क्या कर डाला ? विद्या का ध्यान आते ही श्यामलाल का मन पुत्री को देखने के लिए अधीर हो उठा। वह उसी समय उससे मिलने के लिए भीतर चले गए।

श्यामलाल भीतर चले तो गए, किन्तु उन्हें मालूम नहीं था कि विद्या किस कमरे में होगी। वह खड़े-खड़े नेत्रों द्वारा उसे खोजने की चेष्टा कर ही रहे थे कि इतने में एक कृशकाय बाला आ कर उनके गले से लिपट कर फूट-फूट कर रोने लगी। श्यामलाल ने देखा तो वह विद्या ही थी, किन्तु बिल्कुल परिवर्तित रूप में ! दुर्बलता के कारण उसका शरीर पहले से आधा रह गया था, चेहरा पीला पड़ गया था और आँखें रोने के कारण सूजी हुई थीं। श्यामलाल का हृदय धक्-से रह गया। उसने सोचा कि अपनी पुत्री की इस दुर्दशा के लिए वह स्वयं उत्तरदायी है। एक बात से श्यामलाल को सन्तोष हुआ। उसने सोचा कि मेरी पुत्री पूर्ण जैसी निर्मोही नहीं है। श्वसुर की मृत्यु पर उसे अपार दुख हुआ है। इसी कारण तो निरन्तर रोने से उसकी आँखें सूज गई हैं।

उसे कुछ गर्व का अनुभव हुआ। उसने सोचा कि ऐसी स्नेहमयी बाला को ऐसा निर्मोही पति प्रदान कर विधाता ने उचित नहीं किया। न जाने दोनों में कैसी पटती होगी। न जानने की बात ही क्या है, स्पष्ट है। विद्या सुखी नहीं है। वह अपने मुख से कुछ नहीं कह रही तो क्या हुआ, उसका दुर्बल पीला शरीर तो सब कुछ कह रहा है। श्वसुर को मरे हुए तो अभी कुल दो-चार दिन ही हुए हैं! क्या इसी बीच वह इतनी दुर्बल हो जाती? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। वह पहले से ही दुखी रही होगी। श्वसुर की मृत्यु तो उसके दुख के प्रकट होने का एक बहाना प्रतीत होती है। कन्या के कातर रुदन से श्यामलाल का हृदय फटा जा रहा था। वैसे उन्होंने बड़ी कठिनता से पुत्री को चुप कराया और अन्दर ले जा कर चारपाई पर बैठाया। वह स्वयं भी उसे सान्त्वना देने के लिए पास रखी दूसरी चारपाई पर बैठ गए और बोले—

"विद्या बेटी, इस प्रकार निराश होने से काम नहीं चलेगा। तुम्हारी सास तो है नहीं और न कोई और घर में बड़ी है जो तुम्हें धैर्य बँधाएगी। तुम स्वयं समझदार हो। मृत्यु किसी के हाथ थोड़े ही होती है। ईश्वर की इच्छा है। जो होना था सो हो गया। अब तुम बीती बातों को भूल कर धैर्य धारण करो और अपने स्वास्थ्य को सँभालो।"

प्रायः ऐसा होता है कि अपने प्रिय सम्बन्धी के सान्त्वनापूर्ण वाक्य सुन कर मानस में संचित अश्रु-राशि और भी द्विगुणित वेग से लुटने लगती है। यही हाल विद्या का हुआ। पिता के उक्त वचनों को सुन कर उसके कठिनता से रोके गए अश्रु प्रबल वेग से प्रवाहित होने लगे। श्यामलाल से यह नहीं देखा गया। उसने रुमाल से पुत्री के आँसू पोंछ दिए और कुछ समय के लिए मौन भाव से बैठे रहे। जब विद्या पूर्णतः शान्त प्रतीत होने लगी तो श्यामलाल ने मौन भङ्ग करते हुए कहा—

"बेटी, मैं तुम्हें दुखी करने नहीं आया, अपितु धैर्य बँधाने आया हूँ किन्तु तुम और भी अधिक रोती हो। इससे तो यही अच्छा है कि मैं

कुछ भी न कहूँ। यदि तुम चाहती हो कि मैं अपनी बात कहूँ तो शपथ लो कि अब नहीं रोओगी।"

विद्या ने मुख से तो कुछ नहीं कहा, किन्तु सिर हिला कर यह संकेत दे दिया कि वह अब नहीं रोएगी। अतः श्यामलाल ने पुनः कहा—

"मैं जानता हूँ कि दुखाधिक्य के कारण तुम से बोला नहीं जा रहा है। मैं भी अधिक बातें कह कर तुम्हारे दुख को बढ़ाऊँगा नहीं। इस समय तुम्हारी स्थिति अच्छी नहीं है। बिल्कुल बीमार-सी लग रही हो। मन तो कह रहा है कि अपने साथ तुम्हें भी लेता जाऊँ। वहाँ रह कर तुम्हारी तबियत सुधर जाएगी, किन्तु इस समय स्थिति ऐसी नहीं है। घर में किसी बड़ी-बूढ़ी के न रहने से सब कार्य तुम्हें ही सँभालना है। अतः इस समय तो तुम्हें ले जाना या ले जाने के लिए कहना भी ठीक नहीं होगा, किन्तु मैं एक महीने बाद तुम्हें भेजने के लिए पूर्ण को पत्र लिखूँगा। उस समय तक तुम धैर्य धारण करो और अपने स्वास्थ्य को और अधिक न गिराओ। अब मैं चलता हूँ। आज शाम की गाड़ी से ही हरिपुर जा रहा हूँ।"

इतनी देर बाद विद्या का मुँह खुला। वह कातर वाणी से बोली—

"पिता जी, आप अभी न जाइए। पूज्य पिता जी के चले जाने से मेरा हृदय सूना हो गया है। वह मुझे उनसे अधिक स्नेह प्रदान करते थे। अब उनके चले जाने के बाद मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। इस घर में अब कोई अपना नहीं लगता। आप कुछ दिन यहाँ रहेंगे तो मेरे मन को सन्तोष हो जाएगा।"

विद्या ने कातर दृष्टि से पिता की ओर देखा, किन्तु श्यामलाल ने उत्तर दिया—

"बेटी, तुम कह तो ठीक रही हो, किन्तु एक बात में तुम भूल कर रही हो। मैं तुम्हारा पिता हूँ। पिता कन्या के घर पर खा-पी नहीं सकता,

यह तुम्हें पता है। फिर मैं तुम्हारे घर कैसे रह सकता हूँ ? यद्यपि यह ठीक है कि मैं आज की तरह खाना बाहर होटल में भी खा सकता हूँ, फिर भी पिता को कन्या के यहाँ अधिक दिन रहना शोभा नहीं देता। तुम मेरी विवशता पहचान कर मुझे न रोको। एक महीने तक जैसे-तैसे धैर्य धारण करो और पूर्ण को भी दुखी होने पर धैर्य बँधाती रहो। एक महीने के बाद मैं तुम्हें बुला लूँगा।"

पूर्ण का नाम सुन कर विद्या पुनः उदास हो गई। बड़ी कठिनता से उसने अपने अश्रुओं को रोक लिया। श्यामलाल ने इस परिवर्तन को देख लिया, किन्तु इस समय वह उस विषय को छेड़ कर विद्या को रुलाना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने विद्या के सिर पर हाथ रख कर उसे आशीर्वाद दिया और बाहर चले गए।

छः

बनारस में अपनी पुत्री की शोचनीय अवस्था को देखने पर श्याम-लाल का मन अत्यन्त खिन्न हो गया था। वहाँ से लौटने पर उन्होंने अपनी पत्नी को भी दुखी हृदय से उन सब बातों से परिचित कराया। विद्या की अवस्था को जान कर उसे भी अत्यन्त दुःख हुआ। कुछ समय तक वे दोनों मौन रहे और फिर सहसा श्यामलाल ने कहा—

"जानती हो लक्ष्मी, विद्या की इस दुर्दशा के लिए उत्तरदायी कौन है ?"

लक्ष्मी का हृदय काँप गया। अपने को ही अब तक सब बातों के लिए उत्तरदायी समझती थी, क्योंकि उसने श्यामलाल को विद्या का विवाह शीघ्र करने का परामर्श दिया था। उसने अपना सिर नीचा कर लिया और अत्यन्त अनमनी-सी हो कर बोली—"मैं !"

श्यामलाल ने सिर हिला कर अस्वीकार करते हुए कहा—

"नहीं, तुम नहीं ! और मैं भी नहीं ! हमारे समाज के संकुचित नियम ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। यदि जाति-च्युत होने और लोक-निन्दा का भय न होता तो हम कदापि इतनी जल्दी में विवाह न करते और फिर हमें यह दिन भी न देखना पड़ता। यदि समाज ने १६ वर्ष के बाद कन्या के विवाह को बुरा न माना होता तो मोहल्ले वालों की क्या मज़ाल थी कि हम पर उँगली उठाते। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता

तो तुम भी मुझसे जल्दी करने का आग्रह न करतीं और न मैं ही ऐसी जल्दी करता। इस प्रकार दोष की जड़ नियम हैं, व्यक्ति नहीं।"

यद्यपि श्यामलाल ने लक्ष्मी को दोष-मुक्त ठहरा दिया था, किन्तु मन में वह अभी तक अपने को अपराधी समझ रही थी। श्यामलाल की उपर्युक्त बात सुन कर बोली—

"किन्तु, नियम व्यक्ति ने ही तो बनाए हैं।"

"हाँ, यह तुमने ठीक कहा है। तुम काफी समझदार हो। व्यक्ति द्वारा बनाए हुए नियम समय आने पर उसके लिए बन्धन बन जाते हैं। खैर, छोड़ो इन बातों को। यह तो समाज की रीति है। इसे कोई नहीं मिटा सकता। जब तक व्यक्ति होंगे उनका समाज भी रहेगा और वह समाज व्यक्ति के लाभ को दृष्टि में रख कर नियम भी बनाएगा, चाहे परिणाम कुछ भी हो।"

कुछ देर सोच कर पुनः श्यामलाल ने कहा—

"मैंने एक निश्चय किया है।"

इस बार लक्ष्मी ने चौंक कर श्यामलाल की ओर देखा। बोली—

"कौन-सा?"

"यही कि छोटी लड़कियों की सगाई छोटी आयु में ही देख भाल कर कर दूँगा जिससे उनके बड़ी हो जाने पर शीघ्रता न करनी पड़े। राधा अब ग्यारह साल की है। समाज की आँखों से अभी वह पाँच वर्ष तक बची रह सकती है, किन्तु मैं अभी से उसके लिए वर खोज लूँगा और इस सम्बन्ध में भली-भाँति जाँच भी कर लूँगा जिससे बाद में पश्चात्ताप न करना पड़े।"

लक्ष्मी ने सहमति-सूचक सिर हिला दिया। श्यामलाल ने फिर कहा—

"इसके अतिरिक्त एक बात मैंने और सोची है। कन्या को अपने

से ऊँचे घर कदापि नहीं देना चाहिए। अन्यथा लड़के वाले समझते हैं कि हम कन्या पर और कन्या के माता-पिता पर कृपा कर रहे हैं। इसका सारा बदला वे कन्या से लेते हैं। बेचारी लड़की को जन्म भर दब कर रहना पड़ता है।"

लक्ष्मी ने आपत्ति करते हुए कहा—

"तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। सुख और दुःख कन्या के भाग्य की बात है। इसमें अमीर और गरीब घर से कोई अन्तर नहीं पड़ता। अब विद्या के ससुराल वालों को ही लो। वे कोई हमसे अधिक धनी हैं? हमसे कुछ न कुछ कम ही हैं।"

"हाँ, धन की दृष्टि से तो वे हमसे कम हैं, किन्तु धन का अभिमान तो उन्हें अधिक है। यह अभिमान और किसी में नहीं, अपितु पूर्ण में ही है। वह तो अपने और अपने धन के आगे किसी को कुछ समझता ही नहीं। अभी तक तो बाप जीवित था। अतः फिर भी दब कर रहता था, किन्तु अब उसका अभिमान न जाने क्या रंग लाए। बेचारी विद्या का जीवन श्वसुर के मरने से और भी अन्धकारपूर्ण हो गया है।"

"यह तो है ही। इसी लिए तो कहती हूँ कि तुम उसे जल्दी बुला लो। कुछ दिन तो सुख से रहेगी। तब तक शायद उसका भाग्य बदल जाए।"

"खैर, उसे बुलाने को तो मैं कल-परसों तक चिट्ठी लिख दूँगा। मैं तो राधा और बाकी छोटी लड़कियों की बात कह रहा था। उन्हें मैं निर्धन परिवारों में दूँगा जिससे आयु भर घर वाले उन्हें सुख से रखें।"

लक्ष्मी की आत्मा यह स्वीकार न कर सकती थी कि उसकी लड़कियाँ निर्धन घरों में जाएँ। फिर भी इस समय उसे विद्या की चिन्ता थी। इसलिए पति का रुख देख कर चुप हो रही। उस दिन यह बात यहीं पर समाप्त हो गई।

श्यामलाल ने विद्या को बुलाने के लिए पूर्णचन्द्र को पत्र लिखा तो उसने उत्तर दिया कि अभी एक महीने बाद भेजा जाएगा। एक महीने बाद श्यामलाल स्वयं विद्या को लेने बनारस गया। पहली गाड़ी छूट गई। अतः दूसरी गाड़ी से जब वह पूर्णचन्द्र के घर पहुँचा तब रात हो चुकी थी। उसने जा कर दरवाजा खटखटाया। थोड़ी देर बाद विद्या ने आ कर द्वार खोल दिया। भीतर जा कर श्यामलाल ने देखा कि विद्या के अतिरिक्त घर में कोई न था। श्यामलाल ने सोचा इतनी रात के समय पूर्ण घर से बाहर क्या कर रहा होगा! दुकान तो जल्दी ही बन्द कर दी जाती है। विद्या अकेली है, इसका उसे तनिक भी ध्यान नहीं है। आखिर उसने विद्या से ही पूछा। बोला—

"क्यों विद्या, क्या पूर्ण अभी दुकान पर ही हैं। विद्या ने सिर नीचा कर उत्तर दिया—

"नहीं, दुकान तो कब की बन्द कर दी। वह आज किसी मित्र के यहाँ गए हैं। देर से लौटेंगे।"

श्यामलाल ने कुछ आश्चर्यचकित हो कर उत्तर दिया—

"ऐसा भी क्या मित्र हुआ जो इतनी रात तक उसके यहाँ से नहीं लौटा! आखिर घर में तुम अकेली हो, इसका भी तो कुछ ध्यान होना चाहिए।"

विद्या ने कोई उत्तर नहीं दिया। मौन-भाव से उसने पिता के लिए बाहर आँगन में एक चारपाई बिछा दी। श्यामलाल उस पर लेट गया। थका हुआ तो था ही, लेटते ही नींद आ गई। सहसा दरवाजे पर खट-खट की आवाज़ सुन कर श्यामलाल की निद्रा भंग हुई, किन्तु उसने आँखें नहीं खोलीं, चुपचाप उसी प्रकार लेटा रहा। उसने सोचा कि पूर्ण ही आया होगा। उससे इस समय बातें करना उचित नहीं है। प्रातःकाल होने पर देखा जाएगा। कुछ देर बाद उसे दरवाज़ा खोलने की और

फिर धीरे-धीरे विद्या के बोलने की आवाज़ सुनाई दी। उसने ध्यान से कान लगा कर सुना। विद्या गिड़गिड़ा कर पूर्ण से कह रही थी—

"मान जाओ, इस समय मेरे पिता जी आए हुए हैं, आँगन में सो रहे हैं। तुम्हें इस हालत में देख कर वह बहुत दुखी होंगे। अतः चुपचाप इस कमरे में चल कर सो रहो।"

पूर्णचन्द्र ने ज़रा ज़ोर से कहा—

"वाह, तो क्या मैं तुम्हारे पिता से डरता हूँ? जब अपने पिता से ही कभी नहीं डरा तो तुम्हारे पिता जी की तो हस्ती ही क्या? जहाँ मेरा मन चाहेगा, सोऊँगा। तुम सामने से हट जाओ।"

विद्या चुपचाप पीछे हट गई। उसे भय था कि यदि वह अधिक कहेगी तो पूर्णचन्द्र और भी जोर से बोलेगा। इससे पिता जी की निद्रा भंग हो जाएगी और उन्हें जब पता चलेगा कि उनका दामाद शराबी हो गया है, तब न जाने वह क्या कर बैठें। अतः चुप रहने में ही भलाई है।

श्यामलाल जान-बूझ कर होने का ढोंग कर रहा था। उसने सोचा कि ऐसी क्या बात है जो विद्या पूर्णचन्द्र को मुझ से अलग सोने की सलाह दे रही है। तभी पूर्णचन्द्र ने उससे कुछ दूर आँगन में एक चारपाई बिछा ली। तत्काल ही श्यामलाल को शराब की तेज़ बदबू फैलने का अनुभव हुआ। उनकी बन्द आँखों के सामने का अन्धकार और भी गहन हो गया। तो यह बात है! पिता के मरने के बाद पूर्ण शराबी भी हो गया है। कन्या के दुर्भाग्य में यही एक कसर बाकी थी, सो भी पूरी हो गई। अब क्या करना चाहिए? श्यामलाल ने मन ही मन एक दृढ़ निश्चय किया और शान्तिपूर्वक गहरी निद्रा में मग्न हो गया।

प्रातः काल उठते ही श्यामलाल ने पूर्ण से विद्या को ले जाने की बात कही तो उसने अभिमानपूर्वक कहा—

"भेजना तो नहीं चाहता था, पर आप इतनी दूर से आए हैं इस-लिए ले जाइए। मैं पन्द्रह दिन बाद आकर ले आऊँगा। मुझे रोटियों की तकलीफ रहेगी।"

श्यामलाल को यह व्यर्थ का अनुग्रह कुछ अच्छा नहीं लगा। पूर्ण-चन्द्र ने अगले महीने भेजने को कहा था। इसीलिए वह आया था। उक्त वाक्य सुन कर उसे क्रोध आ गया, किन्तु अवसर देख कर चुप हो रहा और कन्या को ले कर हरिपुर के लिए रवाना हो गया।

जब श्यामलाल और विद्या स्टेशन पर पहुँचे तब गाड़ी के आने में अभी कुछ देर थी। श्यामलाल ने सामान नीचे रख दिया। विद्या को एक पत्थर पर बैठा दिया और स्वयं इधर-उधर टहलने लगा। उसी समय सामने से एक आदमी आता हुआ दिखाई दिया। श्यामलाल को लगा कि उसने उसे कहीं देखा हुआ है, किन्तु कहाँ देखा है यह स्मरण नहीं आ रहा था। ज्यों ही वह व्यक्ति समीप आया त्यों ही विद्या ने उसे देख कर पर्दा कर लिया, किन्तु श्यामलाल उसे फिर भी न पहचान सका। उस व्यक्ति ने श्यामलाल को हाथ जोड़ कर नमस्ते किया और मुस्करा कर बोला—

"लाला जी, मुझे पहचाना था नहीं ?"

श्यामलाल ने कुछ स्मरण करते हुए कहा—

"भाई, देखा तो तुम्हें अवश्य है, किन्तु ठीक-ठीक याद नहीं आ रहा।"

यह कहते-कहते सहसा श्यामलाल की आँखें चमक उठीं। देखने से स्पष्ट प्रतीत होता था कि उसे कोई भूली हुई बात याद आ गई है। एकदम उत्सुकतापूर्वक बोला—

"शायद तुम पूर्णचन्द्र की बरात में आए थे।"

इस पर नवागंतुक खिलखिला कर हँसने लगा और बोला

"आपने बिल्कुल ठीक पहचाना है, लाल जी! मैं पूर्णचन्द्र के मोहल्ले में रहता हूँ, वकील हूँ और मेरा नाम रामस्वरूप है।"

अब श्यामलाल को भली-भाँति स्मरण आ चुका था। अतः वह तुरन्त बोला—

"ओह, आप ही वकील साहब हैं। मेरे मित्र विनोद शंकर ने आपकी बहुत प्रशंसा की थी। अच्छा हुआ कि आज आपके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हो गया।"

अपनी प्रशंसा की बात सुन कर रामस्वरूप लजा गया। बोला—

"आप भी क्या बातें करते हैं, लाला जी! सौभाग्य तो मेरा है जो आप जैसे पुण्यात्मा के दर्शन हुए। इतनी योग्य ओर सीधी-सादी पुत्री के पिता होने के कारण आप सचमुच ही पुण्यात्मा हैं।"

विद्या की प्रशंसा सुन कर श्यामलाल को बड़ी प्रसन्नता हुई। प्रकट में बोला—

"सुनाइए वकील साहब, हाल-चाल क्या हैं?"

वकील साहब उदास हो कर बोले—

"हाल-चाल क्या होने हैं, लाला जी! जब से पूर्ण के पिता मरे हैं तब से मोहल्ले की मानो जान ही निकल गई है। आदमी क्या थे, हीरा थे। इतना धन होने पर भी अभिमान तो जैसे छू तक नहीं गया था। विद्या बेटी को बहुत स्नेह करते थे। विद्या तो खैर है ही स्नेह के योग्य, वह तो सारी दुनिया से स्नेह करते थे। बड़े ही सज्जन थे।"

श्यामलाल ने कहा—

"इसमें क्या सन्देह है, वकील साहब। उनके यहाँ विद्या को दे कर मैं बहुत सन्तुष्ट था, किन्तु अब तो स्थिति ही बदल गई है।"

वकील साहब ने समीप आकर बहुत धीरे से कहा—

"तो आप सब कुछ जानते हैं, लाला जी?"

श्यामलाल अधिक नहीं जानते थे, किन्तु जानने की लालसा बहुत थी, अतः बोले—

"जानता तो मैं कुछ भी नहीं वकील साहब ! किन्तु विद्या के दुखी चेहरे और पहले से चौथाई स्वास्थ्य को देख कर यही अनुमान होता है कि वह प्रसन्न नहीं है।"

वकील साहब ने उसी प्रकार धीमे स्वर में कहा—

"प्रसन्न कैसे होगी लाला जी ! जब से पिता मरे हैं तब से पूर्ण तो एकदम बुराई के रास्ते पर चल पड़ा है। बुरे आदमियों का साथ बुरा ही बना देता है, लाला जी ! सुना है और सुना क्या है साफ मैंने आँखों देखा है, सदैव गुण्डे दोस्तों के साथ आवारा घूमता रहता है। शराब पीता है और ईश्वर जाने क्या-क्या करता है। पिता की सारी सम्पत्ति कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाएगी। फिर शायद चोरी और डाके भी प्रारम्भ कर दे। बेचारी विद्या.......।"

उसी समय गाड़ी आ गई। श्यामलाल ने वकील साहब से विदा ली और विद्या को ले कर गाड़ी में बैठ गए। उनके मन में पूर्ण अन्धकार छाया हुआ था और गाड़ी चली जा रही थी।

घर जा कर श्यामलाल ने लक्ष्मी को पूर्ण के विषय में देखी और सुनी हुई सब बातें बतला दीं। साथ ही अपना निश्चय भी बतला दिया कि वह अब विद्या को कभी ससुराल नहीं भेजेंगे। पूर्ण चाहे जैसे रहे उन्हें कोई मतलब नहीं, किन्तु वह अपनी कन्या को आयु भर उसके पास नहीं जाने देंगे। लक्ष्मी ने इसका विरोध करते हुए कहा—

"यह ठीक नहीं होगा। विद्या वहाँ रहेगी तो कभी न कभी सुधार लेगी। अगर तुम उसे नहीं भेजोगे तो पूर्ण चिढ़ जाएगा।"

श्यामलाल ने क्रोध में कहा—

"जो उसे करना हो करे। चिढ़ जाएगा तो हमारी बला से ! जब

हमें उसके पास कभी विद्या को भेजना ही नहीं तो हमें क्या चिन्ता ? हमारी तरफ से भाड़ में जाए या भेरे में।"

लक्ष्मी ने दुखित-सी हो कर कहा—

"तुम ऐसा सोच सकते हो, किन्तु विद्या तो ऐसा नहीं सोच सकती। कुछ उसके मन से भी पूछा है। आखिर वह उसका पति है। चाहे जैसा भी हो उसके लिए तो पूज्य है।"

श्यामलाल ने और भी क्रोधित हो कर कहा—

"इन्हीं दकियानूसी विचारों के कारण तो हमारी ललनाओं का भाग्य डूबा हुआ है। तुम चाहे लाख समझाओ, मैं विद्या को अब कभी नहीं भेज सकता। मुझे विश्वास है कि विद्या भी निर्णय को सहर्ष स्वीकार करेगी। बेचारी को क्या सुख मिला है उस दुष्ट के साथ जो वह उसके साथ जाने का हठ करेगी।"

लक्ष्मी इस बार श्यामलाल का विरोध न कर सकी। वह जानती थी कि पति का स्वभाव क्रोधी है। कहीं व्यर्थ का झगड़ा खड़ा न हो जाए। जो ईश्वर को स्वीकार होगा वही हो जाएगा।

जिस समय श्यामलाल और लक्ष्मी में उपयुक्त बातें हुई उस समय विद्या राधा के साथ अपनी किसी सहेली के यहाँ गई हुई थी। अतः उसे पिता के निर्णय और माता के तद्विषयक विचारों का तनिक भी पता न लग सका।

पन्द्रह दिन की अपेक्षा चौदह दिन बाद ही पूर्णचन्द्र बिना पत्र डाले सहसा विद्या को लेने के लिए हरिपुर आ गया। लक्ष्मी ने उसकी काफी आवभगत की, किन्तु श्यामलाल इस ओर से विरक्त रहा। दो दिन बाद पूर्णचन्द्र ने लक्ष्मी से विद्या को ले जाने की बात कही। श्यामलाल तो सामने आता ही न था। अतः उसे लक्ष्मी से ही अपनी बात कहनी पड़ी। लक्ष्मी को कोई उत्तर सूझ नहीं पड़ा। उसने कहा—

"बेटा, अभी क्या जल्दी है? कुछ दिन यहाँ ठहरो, तुम्हारा घर है। उसे भी अभी एक-दो महीने और रह लेने दो।"

पूर्णचन्द्र ने तुरन्त ही कहा—

"नहीं जी, मेरे पास इतना समय नहीं है कि रोज-रोज आता फिरूँ। फिर मुझे रोटियों की भी दिक्कत रहती है। अब तो मैं लेकर ही जाऊँगा।"

लक्ष्मी ने और कुछ कहना व्यर्थ समझा। उसने जा कर श्यामलाल को पूर्ण की बात बतला दी। श्यामलाल ने पूर्ण के सामने आ कर शान्तिपूर्ण शब्दों में कहा—

"तुम जब भी चाहो जा सकते हो, किन्तु मेरी पुत्री अब तुम्हारे साथ नहीं रह सकती।"

इस अप्रत्याशित उत्तर से पूर्णचन्द्र घबरा-सा गया। हकलाता हुआ बोला—

"क्या—कि—या—क्या मतलब?"

श्यामलाल ने उसी प्रकार शान्त-भाव से कहा—

"मतलब यही कि अब वह तुम से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगी। सारी आयु वह यहीं पर रहेगी।"

पूर्णचन्द्र ने कुछ क्रोध दिखला कर कहा—

"आखिर इसका कारण?"

अब श्यामलाल को भी क्रोध आ गया। जोर से क्रोधपूर्ण शब्दों में बोला—

"कारण पूछते हो? शर्म नहीं आती! एक भोली-भाली लड़की का जीवन नष्ट कर फिर कारण पूछते हो? क्या इसीलिए उससे विवाह किया था कि शराबियों और जुआरियों में दिन भर आवारागर्दी करो

और रात को एक बजे शराब के नशे में लड़खड़ाते हुए घर पहुँचो। क्या उसे अपनी खरीदी हुई दासी समझा है? जाओ तुम जैसे बहुत देख लिए हैं। अब उससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है।"

लज्जित होने की अपेक्षा और भी क्रोधित हो कर पूर्ण ने कहाः—

"ओहो, मेरी पतिव्रता पत्नी ने आपको मेरे इन गुणों का परिचय दिया है। ठीक है, मैं जैसा हूँ वैसा ही रहूँगा। किसी के भय में बदलने वाला नहीं हूँ, किन्तु यह तो बताएँ कि आपको क्या अधिकार है मुझे अपनी पत्नी को ले जाने से रोकने का?"

श्यामलाल ने तिलमिला कर कहा—

"पूरा अधिकार है नालायक! वह मेरी पुत्री है। तुम जैसे नीच के साथ उसका विवाह कर मैंने जो पाप किया है, उसका प्रायश्चित यही है कि उसे तुम्हारे साथ कभी न भेजूँ; समझे? ईश्वर की कृपा से पिता के घर उसे खाने-पीने का कभी अभाव नहीं रहेगा।"

श्यामलाल के दृढ़ निश्चय के सम्मुख पूर्णचन्द्र का क्रोध ठण्डा पड़ गया। फिर भी उसने क्रोध-मिश्रित वचनों में कहा—

"अगर आपने ऐसा निश्चय कर लिया है तो यही सही। मैं भी किसी की चिन्ता नहीं करता·······।"

अभी पूर्णचन्द्र न जाने क्या-क्या कहता कि उसी समय लक्ष्मी विद्या का हाथ पकड़े हुए झपट कर वहाँ आ गई और बोली—

"ठहरो, पहले विद्या के मन की बात तो जान लो। पीछे कुछ निश्चय करना।"

फिर वह विद्या की ओर उन्मुख हो कर बोला—

"बेटी, यह समय लज्जा का नहीं है। तुम्हारे सारे जीवन का प्रश्न है। जो तुम्हरी इच्छा है स्पष्ट कह दो।"

विद्या ने श्यामलाल की ओर मुख कर के, किन्तु दृष्टि को नीची ही रख कर कहा—

"पिता जी, मुझे जाने दो। मेरे यहाँ रहने से व्यर्थ आपकी निन्दा होगी। यह ठीक नहीं है।"

श्यामलाल ने गर्दन टेढ़ी करके कहा—

"तू कोई चिन्ता न कर बेटी! मैं किसी प्रकार की निन्दा की परवाह नहीं करता। इस निन्दा के भय का ही यह परिणाम हुआ है कि मैं तेरा विवाह इस दुष्ट से कर बैठा। अब मैं कभी इस निन्दा की चिन्ता नहीं करूँगा।"

विद्या ने दृढ़ निश्चयात्मक ढँग से कहा—

"नहीं पिता जी, मुझे यह सहन नहीं होगा। आप मुझे मेरे भाग्य पर ही छोड़ दें। मैं अवश्य जाऊँगी।"

विद्या के ये वाक्य सुन कर पूर्णचन्द्र के मुख पर विजयपूर्ण मुस्कान खेलने लगी। यह देख कर श्यामलाल का क्रोध भड़क उठा। अपना सारा क्रोध विद्या पर ही उतारता हुआ बोला—

"बहुत अच्छा! जैसी तेरी मर्जी हो कर। आज से न मैं तेरा पिता हूँ और न तू मेरी पुत्री है। तुम दोनों अब मुझे कभी अपनी मनहूस शक्ल न दिखाना।"

यह कह कर वह क्रोध से पैर पटकता हुआ वहाँ से चला गया। पिता का यह रुख देख कर विद्या रोने लगी, किन्तु लक्ष्मी ने उसे सान्त्वना दी और कहा—

"बेटी, उन्होंने जो कहा, कहने दो। मैं तो अभी जीवित हूँ। जब तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता हो मुझे लिख देना और जब चाहो मेरे पास चली आना। माँ को बेटी भारी नही होती। तुम पतिव्रता हो

इसी लिए पति-सेवा को अपना धर्म मानती हो। जाओ ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

श्यामलाल उस समय दुकान पर चला गया था। रात को लौट कर जब घर आया तो उसने देखा विद्या और पूर्णचन्द्र जा चुके थे। उसने लक्ष्मी से कहा——

"आज से विद्या मेरे लिए मर चुकी। अब कभी मुझ से उसे बुलाने को न कहना।"

लक्ष्मी ने चाहा कि पति को समझाए, किन्तु उसने सोचा कि कहीं बात उल्टी न पड़ जाए। इस समय बात ताजी है। अतः समझाने का प्रभाव उचित नहीं होगा। इस कारण उसने निश्चय किया कि वह फिर कभी इस बात की चर्चा करेगी। यह सोच कर वह चुप हो रही और उसने श्यामलाल की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

सात

जब से हरिराम ने चौधरी के सामने श्यामलाल और घनश्याम में फूट डलवाने का बचन दिया तब से वह इसी चिन्ता में रहता था कि किस प्रकार अपने मनोरथ को सिद्ध करे। वस्तुतः चौधरी को वचन दे कर उसने उस पर व्यर्थ का अहसान लादने का प्रयत्न किया था। अन्यथा लाला जी के परिवार का अधिकाधिक अनिष्ट करने की जितनी इच्छा उसकी स्वयं की थी, उतनी हरिपुर के किसी अन्य जाट की न हो सकती थी। लाला जी और उनके पुत्रों ने उस दिन उसे जेल भेज कर उसके हृदय पर जो गहरा घाव किया था, वह रह-रह कर कसक उठता था और उसे प्रतिशोध के लिए उत्तेजित करता रहता था। जिस दिन तीन मास का कारावास-दण्ड भोग कर वह बाहर आया था उसी दिन उसने मन में निश्चय कर लिया था कि लाला जी के परिवार को समूल नष्ट किए बिना न छोड़ेगा। सम्भव है कि पिछले जन्म में उसने ईश्वर की काफी भक्ति की होगी और इसीलिए ईश्वर ने इस जन्म में उसकी सहायता की। महामारी की बीमारी आई और लाला जी के अतिरिक्त उनके परिवार के दो अन्य बड़े स्तम्भों को भी साथ लेती गई। उस दिन सबसे अधिक प्रसन्नता हरिराम को ही हुई थी। फिर भी अभी श्यामलाल और घनश्याम जैसे दो अथक योद्धा शेष हरिराम के नेत्रों में वे दोनों काँटों की भाँति कसकते थे। होने को तो धर्मचन्द और सतीशचन्द्र भी लाला जी के वंशज थे, किन्तु उनको तो वह दो चीटियाँ समझता था, जिन्हें इच्छा होने पर कभी भी मसला जा सकता

था। सबसे पहले उसे श्यामलाल और घनश्याम से निपटना था। यदि वह दोनों से अलग-अलग मुठभेड़ करता तो उन्हें पराजित करना कोई अधिक कठिन कार्य नहीं था, किन्तु उसके दुर्भाग्य से दोनों भाइयों में इतना स्नेह था कि दोनों एक-दूसरे के लिए प्राण देने के लिए तैयार थे। ऐसी अवस्था में चौधरी द्वारा प्रस्तुत की गई फूट डलवाने की योजना उसे बहुत पसन्द आई।

हरिराम स्वयं तो प्रत्यक्ष रूप में लाला जी और उनके पुत्रों का विरोध कर चुका था। अतः वह जानता था कि यदि वह स्वयं घनश्याम को श्यामलाल के विरुद्ध भड़काना चाहे तो सफल नहीं होगा। उसे अपने भाई धनीराम की याद आ गई और इसी कारण उसने चौधरी से कह दिया कि वह अपने चचेरे भाई के द्वारा इस फूट डलवाने के कार्य को सिद्ध कर लेगा। घर आ कर उसने तुरन्त ही धनीराम के घर जाने का निश्चय किया, किन्तु वहाँ जा कर देखा तो पता लगा कि वह एक महीने के लिए ससुराल गया हुआ है। विवश हो कर हरिराम को मन मार कर एक महीने की प्रतीक्षा में ठहरना पड़ा। वास्तव में धनीराम की सहायता के बिना कार्य-सिद्धि असम्भव थी। जिस समय सब जाटों ने लगान देना बन्द कर दिया था, उस समय भी वह ईमानदारी से लगान देता रहा था। उस समय तो सब जाटों ने उस पर क्रोध किया था और हरिराम ने भी उसे जाति-कुल-कलंक कहा था, किन्तु इस समय केवल वही कुल-कलंक जाति का नाम उज्ज्वल कर सकता था।

ज्यों ही हरिराम को धनीराम के आने का समाचार ज्ञात हुआ त्यों ही वह सब काम छोड़ कर उसके घर पहुँच गया। उसने इतना भी न सोचा कि बेचारा यात्रा से थक कर आया होगा, कुछ देर विश्राम तो कर लेने दूँ। इस समय अपने उद्देश्य की पूर्ति की लालसा ने उसे इतना अन्धा बना दिया था कि उसे उचित-अनुचित का कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया था। जिस समय वह धनीराम के घर पहुँचा उस समय

वह चारपाई पर लेट कर अपनी थकावट मिटाने का प्रयास कर रहा था। भाई को आया देख कर उसने तुरन्त उठ कर उसे नमस्कार किया और आदरपूर्वक चारपाई पर बैठाया। फिर वह उसके लिए हुक्का तैयार करने लगा तो हरिराम ने उसका हाथ पकड़ कर रोकते हुए कहा—

"इस वक्त मैं हुक्का-वुक्का नहीं पीऊँगा धन्नू। तुझ से एक बहुत जरूरी काम है। पूरे एक महीने से बैठा तेरा इन्तजार कर रहा हूँ। आज अभी-अभी तेरे आने की खबर सुन कर दौड़ा चला आ रहा हूँ। तेरे सिवाय और मुझे ऐसा कोई नज़र नहीं आता जो मेरा वह काम कर दे। इसलिए तू मुझे निराश न करियो, नहीं तो मेरा मन बिल्कुल टूट जाएगा।"

धनीराम ने हुक्का एक ओर रख दिया। हरिराम की बात सुन कर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आखिर ऐसा कौन-सा काम है जो उसके अतिरिक्त गाँव का अन्य कोई व्यक्ति नहीं कर सकता और जिसके लिए भाई को उसकी इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ी। प्रकट में बोला—

"क्यों नहीं भैया, भला तुम्हारा काम भी नहीं करूँगा तो और किस का करूँगा? तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे मैं तुम्हारा अपना न हो कर कोई पराया हूँ। हुक्म दो, जो कहोगे वही कर दूँगा।"

धनीराम के इन वाक्यों को सुन कर हरिराम को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उसे लगा कि अब कार्य-सिद्धि अधिक दूर नहीं है, किन्तु उसकी यह प्रसन्नता क्षणिक थी। सहसा उसे ध्यान आया कि शायद श्यामलाल और घनश्याम में फूट डालने की बात सुन कर धनीराम अस्वीकार कर दे। जब सब जाटों ने मिल कर लाला जी को लगान न देने का निश्चय किया था तब भी तो धनीराम ने उनका साथ नहीं दिया था। हरिराम के लाख समझाने पर भी उसने अपना विचार नहीं बदला था। फिर अब इस कार्य में वह सहायता देगा इसका क्या विश्वास? क्षण भर के

लिये उसके मुख पर जो चमक आई थी वह विलीन हो गई और उसका स्थान निराशा की कालिमा ने ले लिया। फिर भी हृदय में आशा की कुछ ज्योति वर्तमान थी। उसी का आश्रय लेकर उसने प्रकट रूप में कहा—

"देख धनीराम, जो कुछ तू कह चुका है इससे पीछे न हटियो। कहीं ऐसा न हो कि काम सुनते ही इन्कार कर बैठो।"

धनीराम ने अपनी आवाज को कुछ ऊँचा करते हुए कहा—

"आखिर काम भी बताओगे या यों ही अविश्वास किए जाओगे। कुछ समझ में नहीं आता कि ऐसा कौन-सा गुरु काम आ पड़ा है जो इस प्रकार की भूमिका बाँधे जा रहे हो। जो भी हो, तुरन्त बता दो। बस, अब मैं सुनने के लिए अत्यन्त अधीर हो उठा हूँ।"

हरिराम ने शीघ्रतापूर्वक कहा—

"अगर ऐसा है तो ले सुन, अब मैं बिना किसी भूमिका के सीधे ही कहूँगा। काम असल में यह है कि लाला जी के सबसे छोटे लड़के घनश्याम को सिखा कर उसके बड़े भाई श्यामलाल की ओर से उसके मन में मैल पैदा करना है। जिससे दोनों भाइयों में फूट पड़ जाए और हम उन्हें हरा कर हरिपुर में फिर से अपना सिक्का जमा लें।"

धनीराम को स्वप्न में भी गुमान नहीं था कि उससे इतना नीच कार्य करने के लिए कहा जाएगा। उसने मन में सोचा कि भैय्या सब कुछ जानते हैं कि मैं इस प्रकार के दुष्टतापूर्ण कार्य करना पसन्द नहीं करता। इसी कारण मैंने पहली बार जाटों का कहना न मान कर लगान देना चालू रखा था। फिर भी उन्होंने इस कार्य के लिए मुझे ही क्यों चुना और उस पर तुर्रा यह कि सारे जाटों में अन्य कोई उन्हें इस कार्य को करने वाला नहीं मिला। उसके चेहरे पर कालिमा छा गई। शुष्क कण्ठ को किसी प्रकार थूक से गीला करके रुआँ-सा हो कर बोला—

"मैं इस कार्य को कैसे कर सकता हूँ, भैया ?"

हरिराम ज़रा उच्च स्वर में बोला—

"तू नहीं कर सकता तो और कौन कर सकता है ? मैं तो कहता हूँ कि केवल तू ही यह काम कर सकता है। मैंने भली-भाँति विचार कर देख लिया है तेरे अतिरिक्त अन्य कोई जाट इस में सफल नहीं हो सकेगा, क्योंकि तू जानता ही है कि लाला जी का विरोध करते समय हम सबने एका कर उनका लगान रोक लिया था। हम में से केवल तू ही ऐसा था कि जो लाख समझाने पर भी न माना। उस समय तो मुझे भी यह बहुत खला पर खैर जो हुआ सो हुआ। अब तू मेरा यह काम कर दे तो जाटों की आँखों में तेरा खोया हुआ मान फिर लौट आएगा, बल्कि यों कहो और भी बढ़ जाएगा।"

धनीराम ने दृढ़ शब्दों में, किन्तु कुछ चिन्तित मुद्रा में कहा—

"किन्तु ऐसा नीच काम मुझसे होगा नहीं, भैय्या।"

हरिराम ने कुछ उत्तेजित हो कर कहा—

"देख धनिराम, नीच काम होता तो मैं तुमसे कभी करने को न कहता। क्या मैं इतना गया-बीता हूँ जो अपने छोटे भाई को बुरा काम करने का उपदेश दूँगा। काम की अच्छाई-बुराई वहाँ देखी जाती है जहाँ आदमी अपने स्वार्थ के लिए कुछ करे। जाति के लाभ के लिए चाहे कुछ भी करना पड़े सब पुण्य माना जाता है। अगर मैं तुझसे अपने हित के लिए ऐसा काम करने को कहता तो तू मुझे हज़ार जूती मार कर शर्मिन्दा करता तब भी न बोलता। पर यह काम जाति का है और इसके लिए कहने में मुझे गर्व है और तुझे भी चाहिए कि चुपचाप अपने बड़े भाई की आज्ञा मान ले।"

धनीराम ने पहले से भी अधिक दृढ़ शब्दों में उत्तर दिया—

"भैय्या, और जो कुछ भी कहोगे सो करूँगा पर यह न कर सकूँगा। कहो तो अभी कुएँ में कूद जाऊँ, फाँसी लगा लूँ, पर इस कार्य के लिए मुझे क्षमा करो। ऐसा अधर्म मुझसे न होगा कि झूठी बातें बना कर दो भाइयों के प्यार को तुड़वाऊँ। और कोई नहीं देखेगा तो ईश्वर तो देखेगा!"

इस बार हरिराम को क्रोध आ गया। तड़प कर बोला—

"अरे वाह रे धर्मात्मा! जैसे मैं कुछ जानता ही न होऊँ! अरे मूर्ख, दाई से पेट क्यों छिपाता है? अभी कुल पाँच वर्ष की बात हुई है जब तूने अपनी पहली बहू के पेट में लात मार कर उसके और उसके पेट में रहने वाले आठ महीने के नन्हे बच्चे के प्राण लिए थे। उस समय तेरा धर्मात्मा पन कहाँ चला गया था। उस वक्त अगर मैं झूठी बातें बना-बना कर लोगों का मूँह बन्द न करता तो आज धर्मात्मा जी जेल की हवा खा रहे होते। आज जो दूसरा ब्याह कर गृहस्थी बना कर बैठा है सो मेरी ही बदौलत है। नहीं तो तेरे जैसे हत्यारों को कौन अपनी बेटी देने आता। इस पर भी आज तू मेरे उपकारों को भूल कर मुझे आँखें दिखा रहा है और मेरा छोटा-सा काम करने से इन्कार कर रहा है?"

धनीराम को लगा कि जैसे हरिराम ने उसके हृदय के दुखते हुए घाव को छू दिया हो। दुखी हो कर बोला—

"उसी पाप ने तो मुझे आदमी बना दिया भैय्या! अगर उससे पहले तुमने यह काम मुझे दिया होता तो मैं प्रसन्नता से कर दिखाता। यह क्या उस समय तो मैं इससे भी भयानक काम करने को तैयार रहता, किन्तु आह! उस दिन जो घटना मेरे जीवन में घटी उसने मेरी आत्मा को बदल के रख दिया है, भैया! उस देवी की मृत्यु-समय की वह मुद्रा मेरे हृदय पर ज्यों की त्यों अंकित है। काश! उस समय

पुलिस मुझे पकड़ कर ले गई होती। मुझे फाँसी की सजा मिलती तो मेरी आत्मा को कुछ शान्ति मिलती। मेरे उस जघन्य कार्य का कुछ प्रायश्चित तो हो जाता। कम से कम मेरे हृदय में यह ज्वाला तो न जलती जिसने आज मेरे शरीर और हृदय को दग्ध कर दिया है। तुम क्या समझते हो कि दूसरा विवाह कर आज मैं प्रसन्न हूँ। नहीं भैया, कदापि नहीं। यह सब भ्रम है, एक पल की छाया-मात्र है। मेरे जीवन में अब सुख नहीं है। अब तो ईश्वर मुझे उठा ले तो मुझे शान्ति मिले।"

हरिराम पश्चात्ताप कर रहा था कि नाहक उसने वह बात छेड़ी। उसका उद्देश्य धनीराम द्वारा अपने कार्य को सिद्ध कराना था, उसके हृदय को दुखाना नहीं। उसने देखा कि उपर्युक्त बात कहते-कहते धनीराम की आँखें सजल हो गई हैं। बात को टालने की इच्छा से उसने कहा—

"खैर धनीराम, जो हुआ सो हुआ। अब व्यर्थ शोक करने से क्या लाभ? मैंने नाहक तेरी दुखती रग को छेड़ दिया। इसके लिए मुझे माफ कर।"

धनीराम ने कुछ प्रकृतिस्थ होते हुए कहा—

"इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, भैय्या! तुमने याद न भी दिलाया होता तो भी मुझे............।"

"खैर छोड़, अब यह बता कि वह काम कर सकेगा या नहीं? तेरा बड़ा भाई तुझसे इतनी प्रार्थना कर रहा है, कुछ तो ख्याल कर।"

धनीराम ने कुछ परेशान-सा हो कर कहा—

"मैं उस दिन से निश्चय कर चुका हूँ कि कभी किसी पाप में जान-बूझ कर शरीक नहीं होऊँगा। उधर तुम्हारी आज्ञा का भी ख्याल है।

क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ! पाप करने की तो मेरी आत्मा किसी प्रकार गवाही नहीं देती ।"

हरिराम समझ गया कि जब तक इसके मन से पाप-पुण्य की भावना को नष्ट नहीं किया जायगा, तब तक काम नहीं बनेगा । उसे एक कहावत याद आ गई कि विष को विष मारता है । बस उसने उसी का आश्रय लेते हुए कहा—

"तू समझता नहीं है, धनीराम ! मैं तुझे कैसे समझाऊँ कि जाति की भलाई के लिए जो व्यक्ति प्रयत्न करता है उसे ईश्वर सबसे बड़ा पुण्यात्मा समझते हैं । उस का स्थान स्वर्गलोक में सबसे ऊपर होता है । देख, शिवाजी ने अपनी जाति के लिए मुगलों को जान से मार दिया । किसी को जान से मारने से भी बढ़ कर भला कोई पाप हो सकता है । फिर भी लोग उसका नाम आदर से लेते हैं और रामचन्द्र को ही लो ! वे तो साक्षात् भगवान् थे । उन्होंने मनुष्य जाति की रक्षा के लिए राक्षसों का संहार किया, फिर भी घर-घर उनकी पूजा होती है । जब स्वयं भगवान् ने अपनी जाति के नाम के लिए हत्या का पाप कर दिया तो हम तुम तो तुच्छ जीव हैं । जब उन्हीं को पाप नहीं लगा तो हमें ही क्यों लगने लगा ?"

धनीराम अपने भाई के इस ज्ञान पर मुस्करा दिया । बोला—

"पर उन्होंने जो कुछ किया भैया, सो पीछे किया, पहले नहीं । अगर मुगलों ने पहले हिन्दू-जाति पर अत्याचार न किए होते तो शिवाजी को क्या आवश्यकता थी जो उन्हें मारने जाता । इसी प्रकार रामचन्द्र जी ने भी जो कुछ किया सब पीछे किया । पहले राक्षसों ने ऋषियों को परेशान किया था, उनकी पत्नी का हरण किया था, फिर उन्हें भी क्रोध आ गया । पहले तो उनकी इच्छा न थी कि वे राक्षसों का संहार करें ।"

हरिराम ने निर्दोष-सी मुद्रा बना कर कहा—

"यही तो हम कहने जा रहे हैं। पहले लाला जी के परिवार ने हम पर अत्याचार किए। लाला जी को क्या हक था कि हमारी बाप-दादों के जमाने से चली आई जमीन को अपनी बता कर हमसे लगान माँगते। इसी का विरोध तो हमने उस दिन किया था। जिसके लिए उन्होंने मुझे जेल भिजवा कर एक और अत्याचार हमारी जाति पर किया। यदि हम इस अत्याचार को चुपचाप सहन कर के बैठ जाएँ तो लानत है हमारी मर्दानगी पर।"

धनीराम ने दबी ज़बान से कहा—

"किन्तु लाला जी तो पहले ही चल बसे, भैय्या! फिर क्रोध करने से क्या लाभ?"

हरिराम ने उत्तेजित स्वर से कहा—

"लाला जी चले गए तो क्या हुआ? यह तो ईश्वर ने उन्हें और उनके दो पुत्रों को उनके पापों का फल दिया, किन्तु हमें भी तो प्रति-शोधन लेना है। उसके दोनों पुत्रों से ही अब उसका बदला लिया जाएगा।"

कुछ देर रुक कर वह पुनः बोला—

"यदि तू मेरी सहायता करेगा तो मैं इन्हें केवल नीचा दिखा कर छोड़ दूँगा, किन्तु यदि तू नहीं मानेगा तो मैं सीधा एक-एक को अकेला पा कर दोनों की हत्या कर डालूँगा। फिर चाहे मुझे फाँसी ही हो जाए, मझे चिन्ता नहीं है। कम से कम मरते समय मुझे सन्तोष तो होगा कि मैंने जाति का कुछ हित किया।"

यह बात सुन कर धनीराम भयभीत हो गया। वह तुरन्त बोला—

"नहीं भैय्या, ऐसा न करना। मैं अवश्य तुम्हारा कार्य करूँगा। ईश्वर के लिए उन्हें मार कर मूझे भी पाप का भागी न बना देना।

अपने कार्य को इस प्रकार सफल होते देख कर हरिराम बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तो आदेश में आ कर हत्या की बात कह दी थी। यदि

उसे पता होता कि धनीराम पर इसका इतना प्रभाव पड़ेगा तो वह सबसे पहले इसे ही कहता। उसने प्रसन्न हो कर कहा—

"नहीं-नहीं, मेरा वास्तविक उद्देश्य उन्हें मारना थोड़े ही है। मैं तो उन्हें नीचा दिखा कर हरिपुर में अपनी जाति का सिक्का बुलन्द करना चहता हूँ। इसीलिए तो मैं तेरी सहायता चहता हूँ, किन्तु यदि तूने यह कार्य नहीं किया तो फिर मुझे विवश होकर यही करना पडेगा।"

धनीराम ने आश्वासन दिया कि वह अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करेगा। हरिराम प्रसन्न हो कर चला गया। धनीराम ने वचन तो दे दिया किन्तु उसकी आत्मा विद्रोह कर रही थी। इसके अतिरिक्त उसे घनश्याम को सिखाना अत्यन्त कठिन ही नहीं अपितु असम्भव प्रतीत हो रहा था। चाहे घनश्याम और श्यामलाल उसको कितना ही मानते हों फिर भी था तो वह उनका आसामी ही। आसामी की हैसियत जमींदार के सामने लगभग एक नौकर जैसी ही थी। फिर नौकर हो कर वह मालिक को कैसे सिखाएगा कि वह अपने भाई के विरुद्ध हो जए। इसके अतिरिक्त उसे यह भी पता था कि घनश्याम अपने बड़े भाई के लिए प्राण भी देने को तैयार है। ऐसी अवस्था में फूट डालना और भी दुश्कर था।

धनीराम ने मन ही मन निश्चय किया कि वह इस दिशा में कुछ भी नहीं करेगा। जब हरिराम पूछेगा तो ऐसे ही झूठ-मूठ उत्तर दे देगा कि उसने काफी प्रयत्न किया है। फूट डालने के पाप से इस थोड़े से मिथ्या-भाषण का पाप बहुत कम होगा। इस प्रकार निश्चय कर वह निश्चिन्त हो गया और उसकी आत्मा भी सन्तुष्ट हो गई।

इसी प्रकार तीन-चार मास व्यतीत हो गए। धनीराम लगभग भूल चुका था कि उसके भाई ने उसे गुरु-कार्य सौंपा था और वह उससे कभी न कभी इस विषय में पूछताछ भी कर सकता है। वस्तुतः इन दिनों हरिराम की उससे कभी भेंट ही नहीं हुई। अन्यथा वह इस घटना को

इतनी शीघ्र न भूल जाता ! भेंट न होने का भी एक कारण था जो धनीराम को ज्ञात न था किन्तु हरिराम इससे भली-भाँति परिचित था। वस्तुतः हरिराम ने स्वयं ही जान-बूझ कर भेंट नहीं की थी। वह बड़ी कठिनता से धनीराम को अपने मनोवांछित कार्य के लिए तैयर कर पाया था। फिर भी उसे भय था कि कहीं उसका मन फिर से न बदल जाए। इसी करण उसने तीन-चार महीने तक उससे न मिलना ही उचित समझा। उसने सोचा कि इतने समय में वह अवश्य कुछ न कुछ सफलता प्राप्त कर लेगा और तब वह उससे मिलेगा और उसके कार्य की दाद देगा। इसीलिए जब उसे मार्ग में कहीं धनीराम मिलता तो वह उसकी आँख बचा कर दूसरे मार्ग से निकल जाता। एक-आध बार एक ही मार्ग होने के कारण विवश हो कर उसके पास से गुजरना भी पड़ा तो वह इतनी शीघ्रतापूर्वक निकल गया कि या तो धनीराम देख ही नहीं पाया और अगर कभी देख भी पाया तो बुला नहीं पाया।

इतना होते हुए भी हरिराम इस ओर से शान्त नहीं बैठ सका। वह प्रायः किसी न किसी बहाने से श्यामलाल अथवा घनश्याम के घर जा कर देखता रहता था कि धनीराम द्वारा बोया गया फूट का बीज कुछ विकास को प्राप्त हुआ कि नहीं, किन्तु यह देख कर उसे निराशा ही होती थी कि दोनों भाइयों के प्रेम में देखने में तनिक भी अन्तर नहीं प्रतीत होता था। वह सोचता था कि सम्भव है श्यामलाल की बड़ी लड़की की शादी के दिन निकट होने के कारण घनश्याम केवल दिखाने के तौर पर पहले जैसा प्रेम-व्यवहार कर रहा हो और मन ही मन भाई के विरुद्ध हो चुका हो।

जब पाँच मास व्यतीत हो गए तो वह एक दिन फिर धनीराम से मिला। मिलते ही वह बिना किसी भूमिका के बोला—

"क्यों भाई, क्या हाल है तेरे शिकार का? धनीराम ने एक दम घबरा कर पूछा—

"शिकार! कैसा शिकार?"

हरिराम ने मुस्करा कर कहा—

"अरे भाई, तू तो बहुत भोला है। ज़रा-सी लच्छेदार भाषा भी नहीं समझता। क्या तू भूल गया कि आज से पाँच मास पहले मैंने तुझ से कौन-सा काम करने को कहा था?"

धनीराम को भूला हुआ कार्य तुरन्त याद आ गया और साथ ही उसके मुख पर कालिमा छा गई। उसने भरसक उसको छिपाने की चेष्टा करते हुए कहा—

"वह काम!...हाँ....हाँ....नहीं, भूला नहीं हूँ। कोशिश कर रहा हूँ। हाल की बात भगवान् जाने।"

हरिराम ने प्रसन्न हो कर कहा—

"तो तूने घनश्याम को सिखाया था कि उसका भाई स्वार्थी है। पिता के मरते ही बोझ पड़ने के डर से बँटवारा कर दिया और वह मन से उसे नहीं चाहता आदि आदि।"

धनिराम ने स्वीकारात्मक रीति से सिर हिला कर कहा—

"हाँ, हाँ मैंने यह सभी कुछ कहा था और अब भी रोज़ कहता हूँ।"

हरिराम नें उत्सुक हो कर पूछा—

"तो घनश्याम ने कुछ विरोध यहीं किया?"

धनीराम ने सोचा कि अगर वह कहे कि किया था तो व्यर्थ में सौ बातें और बना कर बतानी पड़ेंगी। अतः उसने गर्दन हिला कर कह दिया कि "नहीं।"

हरिराम यह सुनते ही उछल पड़ा और धनीराम की पीठ ठोंक कर बोला—

"शाबाश मेरे शेर ! फिर तो काम बन गया । अब तो जरूर वह मन में श्यामलाल से घृणा करता होगा । मैं चौधरी से जा कर तेरे इस काम का बखान करूँगा तो वह बहुत खुश होगा और सब जाट तेरी चौगुनी इज़्ज़त करेंगे ।"

धनीराम मौन रहा । हरिराम के चले जाने पर उसे अपनी कायरता पर बड़ी ग्लानि हुई । उसने अपने को धिक्कारा कि उसने व्यर्थ झूठ बोला । उसने सोचा कि व्यर्थ झूठी बातें बना कर किसी को धोखे में रखने से क्या लाभ ? एक न एक दिन तो सत्य प्रकट होगा ही । फिर मैं क्यों एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलूँ । उसने निश्चय किया कि वह दूसरे दिन स्वयं हरिराम के पास जा कर कह देगा कि उसके प्रयत्नों से कार्य-सिद्धि की कोई आशा नहीं है और वह इसके लिए किसी दूसरे आदमी को खोजे ! दूसरे दिन जब उसने हरिराम के घर जा कर निराश मुद्रा से उपर्युक्त बात कही तो हरिराम को सहसा विश्वास नहीं हुआ । वह एक प्रकार से उसका उपहास-सा करता हुआ बोला—

"वाह यार ! तू भी खूब है ! कल कहता था काम हो गया है, आज कहता है कि मेरे से हो नहीं हो सकता । मैं तो अभी चौधरी को काम होने की खुशखबरी सुनाने जा रहा था पर तूने तो सब गुड़-गोबर कर दिया । देख, इस तरह निराश नहीं हुआ करते । तू अपना प्रयत्न करता चल । आगे सब भगवान् भली करेंगे, समझा ! और मन को यूँ छोटा न कर ।"

धनीराम ने सिर नीचा करते हुए कहा—

"पर भैया, सच तो यह है कि मैंने कुछ नहीं किया । मैंने भली-भाँति सोच कर देख लिया है कि मैं कुछ कर भी नहीं सकता । मुझे क्षमा कर दो और किसी और व्यक्ति को खोज लो । मैंने कल तुमसे झूठ बोला, इसका मुझे बड़ा दुख है । चाहो, तो मुझे दण्ड दे दो, मैं भोगने को तैयार हूँ ।"

हरिराम के हृदय पर जैसे वज्राघात हुआ, किन्तु दूसरे ही क्षण उसके नेत्र क्रोध से लाल हो गए। धनीराम को धिक्कारता हुआ बोला—

"दूर हो जा मेरी दृष्टि से, जाति-कुल-कलंक! नराधम, नीच! मेरी ही गलती थी जो मैं तुझ सर्प को दुग्ध-पान करा कर निश्चिन्त बैठ गया। उगलना तो तुझे अन्त में विष ही था। मुझ मूर्ख की बुद्धि उस समय मारी गई थी जब मैं तुझ जाति-द्रोहि के पास जाति-लाभ का कार्य सौंपने गया था। अरे! अगर नहीं करना था तो उस दिन किस लिए हामी भरी थी? मुझे धोखे में रख कर तूने सारी जाति को धोखा दिया है। तुझसे इसका बदला अवश्य लिया जाएगा। पहले हम श्यामलाल से बदला ले लें फिर तुझे समझेंगे। कैसा दीन बन कर क्षमा माँग रहा है! दण्ड माँग रहा है, जैसे निरा अबोध बच्चा हो। जा यहाँ से चला जा, और फिर कभी मुझे अपना काला मुँह न दिखाइयो।"

धनीराम शान्त-भाव से सब फटकारें सुनता रहा। उसके हृदय में प्रसन्नता थी कि उसने एक पाप से सहज ही मुक्ति पा ली थी। जब हरिराम ने उससे जाने के लिए कहा तब वह चुपचाप बाहर निकल कर अपने घर चला गया।

हरिराम को धनीराम पर इतना क्रोध आया हुआ था कि वह घर न ठहर सका। बाहर खेतों की ओर जा कर एक घण्टे तक निरुद्देश्य इधर-उधर घूमता रहा। उसने सोचा कि जो कुछ हुआ वह तो बहुत बुरा हुआ। व्यर्थ इतने महीने निकल गए, किन्तु अब आगे क्या किया जाए? धनीराम की मिन्नत-खुशामद करनी व्यर्थ है, क्योंकि मैंने उस दिन कोई कसर नहीं छोड़ी थी। फिर जब उसने इस प्रकार धोखा दिया तो आगे न देगा, इसका क्या विश्वास? और कोई व्यक्ति इस प्रकार का है नहीं। बदला मैं अवश्य लूँगा चाहे मुझे फिर से जेल जाना पड़े। यदि उस दिन लाला जी ने मुझे जेल न भिजवाया होता तो मैं इस विषय में इतना अधिक न सोचता। जाति-लाभ तो मेरे लिए एक

बहाना है। यदि गाँव में हमारी जाति का सिक्का बैठ भी गया तो मुझे कोई विशेष लाभ तो होगा नहीं। अब श्यामलाल आदि के आधीन हैं, फिर चौधरी के आधीन हो जाएँगे। हमारे लिए क्या अन्तर पड़ता है। हमारे लिए तो यही बात ठीक है कि—

"कोउ नृप होउ हमें का हानि ?
चेरी छाँड़ि हम होइब न रानी ।।"

किन्तु उस दिन मुझे जेल भेजा गया, इस अपमान का बदला तो लेना ही है। अच्छा चौधरी के घर जा कर उससे पूछता हूँ कि अब क्या किया जाए ?

चौधरी ने हरिराम को देख कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—

"वाह भई हरिराम, तुम तो जैसे ईद के चाँद हो गए हो। कभी तुम्हारे दर्शन ही नहीं होते।"

हरिराम ने उदास हो कर कहा—

"क्या बताऊँ चौधरी जी, जाति के भले की बातें सोचता रहता हूँ, पर कम्बख्त दुर्भाग्य सब किए कराए पर पानी फेर देता है।"

चौधरी ने उसे उत्साहित करते हुए कहा—

"तुम जैसे शूरवीरों के सामने भाग्य क्या है ! तुम तो स्वयं अपना भाग्य बनाने वाले हो। हमारी जाति का सौभाग्य है जो तुम जैसा हित-चिन्तक उसे मिला। हाँ यह तो बताओ कि लाला जी के सुपुत्रों का क्या हाल है ?"

हरिराम ने और भी उदास हो कर कहा—

"वही तो बताने आया था। हाल सब पहले जैसा ही है, तनिक भी अन्तर नहीं पड़ा।"

चौधरी ने आश्चर्य और दुःख से कहा—

"क्यों ? तुम तो कहते थे कि अपने भाई धनीराम द्वारा दोनों में फूट डलवा दोगे और फिर एक-एक को परास्त कर गाँव में अपनी जाति की धाक बैठाएँगे ।"

हरिराम ने उसी प्रकार उदास स्वर से कहा—

"हमारी जाति का दुर्भाग्य है, चौधरी जी ! और क्या कहूँ ? नहीं तो सब किया-कराया यों असफल न हो जाता ।"

चौधरी ने उत्सुकतापूर्वक कहा—

"आखिर ऐसा क्या हो गया जो तुम इस प्रकार निराश हो गए हो ?"

"होना क्या है ? ईश्वर ने किसी बड़े भारी पाप का फल दिया है । किसी प्रकार धनीराम को फूट डालने के लिए राजी तो किया, पर मुझे क्या पता था कि सब ऊपरी स्वीकृति है । उस समय तो बड़ी मिन्नतें-खुशामदें करने पर किसी प्रकार मान गया । कल पूछने गया तो बोला, प्रयत्न कर रहा हूँ, अवश्य सफलता मिलेगी । आज कम्बख्त आ कर कहने लगा कि उसने कुछ नहीं किया और वह कुछ करेगा भी नहीं । अतः हम अपना और इन्तजाम कर लें । क्या कहूँ, कलियुग आ गया है । भाई ही भाई को इस प्रकार धोखे में रखने लगा है तो औरों का तो कहना ही क्या ?"

चौधरी के मुख का रंग फीका पड़ गया । बोला—

"मुझे तो पहले ही सन्देह था कि वह नहीं मानेगा । उस दिन हम सब उसे समझाकर हार गए कि कुछ दिन लगान रोक ले पर किसी प्रकार नहीं माना । तुमने कहा कि तुम्हारा भाई है इसलिए अवश्य मान लेगा । इसी कारण मैं चुप रहा, नहीं तो मैं तो पहले ही कहने वाला था कि इसका भरोसा छोड़ कर कोई और इन्तजाम करेंगे ।"

"मुझे क्या पता था कि दुनिया में इतना छल-कपट भरा है । मेरा

चचेरा भाई है। इससे पहले कभी मेरा कहना टाला नहीं था। केवल एक बार लगान देने की बात पर ज़िद् पकड़ गया था सो सोचा कोई बात नहीं। अब की देर तक समझाऊँगा तो मान ही जाएगा। नहीं तो मेरा क्या सिर फिर रहा था जो दुष्ट की खुशामदें कर उसके मुख की ओर देखता फिरता। कम्बख्त से यह भी तो नहीं हुआ कि दस-पन्द्रह दिन बाद आ कर मना कर जाता। कम से कम इतने दिन तो व्यर्थ न जाते।'' हरिराम ने क्रोधपूर्वक कहा।

चौधरी ने उसे शान्त करते हुए कहा—

''खैर, जो बीत गई, सो बीत गई। उस पर क्रोध या शोक दोनों व्यर्थ हैं। अब तो आगे की बात सोचो।''

हरिराम ने निराश हो कर कहा—

''मुझे तो कुछ सूझता है नहीं, चौधरी जी! इसीलिए तुम्हारे पास आया हूँ। जैसा तुम कहो वैसा करूं।''

चौधरी ने रहस्यपूर्ण मुस्कान के साथ कहा—

''भई, मेरा तो विचार है कि यह फूट डालने-डलवाने का चक्कर छोड़ो। कोई और बात सोचो।''

हरिराम ने उत्सुकता से कहा—

''और क्या सोचा जा सकता है?''

चौधरी ने कहा—

''मेरे समीप आओ तो मैं तुम्हें एक ऐसी अच्छी योजना बताऊँगा कि सब कंटक मिट जाएँगे। तुम साहसी हो और मुझे विश्वास है कि तुम सहज ही वह कार्य कर लोगे।''

हरिराम ने समीप आ कर और भी अधिक उत्सुकता से कहा—

''क्या है? शीघ्र बताओ, मैं अत्यन्त उत्सुक हूँ।''

चौधरी ने मुस्कराते हुए कहा—

"शुभ लक्षण हैं।" फिर स्वर को यथा-सम्भव धीमा करते हुए कहा—

"मेरा विचार है श्यामलाल को समाप्त कर दिया जाए।"

हरिराम का हृदय काँप उठा। कहा उसने भी धनीराम से यही था, परन्तु करने के लिए उसका मन गवाही नहीं देता था। घबरा कर बोला—

"नहीं चौधरी, ऐसा करके फाँसी लगवाने के लिए मैं फालतू नहीं हूँ। मेरे बाल-बच्चे पीछे किसके सहारे रहेंगे? कुछ और सोचो।"

चौधरी ने बनावटी निराशा से कहा—

"और कोई उपाय मेरे पास नहीं है। तुम तो बेकार घबराते हो। आखिर हम कहीं मर गए हैं जो तुम्हें फाँसी दे दी जाएगी?"

हरिराम ने व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा—

"जिस समय मुझे जेल भेजा गया था उस समय भी आप यहीं थे, चौधरी सहाब! आपके कहने से ही मैंने लगान न देने का निश्चय किया था। फिर पकड़े जाने पर आपने मेरी क्या सहायता की?"

चौधरी ने बिना लज्जित हुए हरिराम को समझाते हुए कहा—

"तुम तो नाहक हम पर गिला करते हो। वक्त-वक्त की बात होती है। उस समय स्थिति ही ऐसी थी। मैं बीमार पड़ गया था। नहीं तो क्या मैं घटना-स्थल पर उपस्थित न होता? किसी साले की क्या मज़ाल थी जो मेरे सामने तुम्हें पकड़ ले जाता? फिर उस समय तुमने खुल्लम-खुल्ला लाला जी से झगड़ा किया था, अनेक गवाह थे। अतः तुम्हारा बचना कठिन था। यदि उस समय तुम्हारे स्थान पर मेरा छोटा भाई रणधीर भी होता तो भी मैं कुछ नहीं कर सकता था; परन्तु अबकी बार वैसी स्थिति ही क्यों पैदा होगी? किसी के सामने श्यामलाल की

हत्या थोड़े ही करनी है। बस अकेले में जंगल में ले जा कर काम करेंगे। मैं भी तुम्हारे साथ होऊँगा। लाश को कहीं ठिकाने लगा कर दोनों चुपचाप चले आएँगे। किसी को कानों-कान भी खबर नहीं होगी।"

हरिराम ने उदास हो कर कहा:--

"पर अगर उस समय भी तुम पहले की भाँति बीमार हो गए तो फिर क्या होगा? फिर तो श्यामलाल के साथ मेरी भी लाश नज़र आएगी।"

चौधरी ने झुँझला कर कहा—

"तुम तो मूर्ख हो, भला मैं बार-बार बीमार ही होता रहूँगा क्या?" फिर खुशामद के स्वर में बोला—

"तुम्हें मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ, भाई! तुम व्यर्थ मुझ पर सन्देह न करो। इस बार मैं भी दिखादूँगा कि मैं जाति का सच्चा सेवक हूँ।"

हरिराम ने कुछ विश्वास करते हुए कहा—

"अच्छा फिर मुझे क्या करना होगा?"

चौधरी ने सन्तुष्ट हो कर कहा—

"बस, थोड़ा ही करना है। अधिक मैं स्वयं करूँगा। तुम आज से लगान देना रोक लो। तुम्हारी जमीन श्यामलाल के हिस्से में है। चार मास बाद जब वह लगान के लिए आदमी भेजे तो कहलवा दो कि तुम बीमार हो। अभी ठहर कर दोगे। कुछ दिन बाद मैं अपने पुत्र को श्यामलाल के पास भेजूँगा कि हरिराम का लगान इस बार मैं दूँगा क्योंकि मैंने उससे रुपए उधार लिए हुए हैं। वह स्वयं आ कर हिसाब बतला कर ले जाए। जब वह आएगा तब मैं उसे बातें करते-करते बस्ती से दूर ले जाऊँगा। पीछे से तुम आ कर मौका देख कर गंडासे से वार करना और बस काम समाप्त, क्या समझे?" चौधरी ने प्रसन्न होते हुए कहा—

हरिराम ने शंका करते हुए कहा—

"किन्तु उसका भाई घनश्याम पीछे से हमारी जान का ग्राहक हो जाएगा।"

चौधरी ने उपहास करते हुए कहा—

"अरे, वह किस खेत की मूली है? उसे मैं देख लूँगा। पहली बात तो यह है कि उसे वास्तविक हत्यारे का पता ही न लगेगा, क्योंकि तुम तो उस समय बीमार के रूप में प्रसिद्ध होगे। दूसरे यदि पता लग भी गया तो गवाह के अभाव में अदालत तुम्हारा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगी। बस तुम निश्चिन्त रहो।"

हरिराम निश्चिन्त तो नहीं हो सका, क्योंकि पहली बार चौधरी के धोखा दे जाने के कारण उसका विश्वास मारा गया था। फिर भी चौधरी की बातें सुन कर उसे कुछ आशा हुई कि सम्भव है इस बार चौधरी पहले जैसा व्यवहार न करे। उसने चौधरी की बात स्वीकार कर ली और घर चला गया।

★

आठ

विद्या के सदैव के लिए सुसराल चले जाने के उपरान्त श्यामलाल ने पक्का निश्चय कर लिया कि छोटी लड़की राधा का विवाह किसी निर्धन परिवार में करेंगे। केवल राधा ही नहीं, अपितु उससे छोटी सीता और सबसे छोटी अहिल्या को भी निर्धन परिवार में देने का उसका विचार था। लक्ष्मी ने एक बार दबी जबान से पति की इस बात का विरोध करना चाहा, किन्तु श्यामलाल के दृढ़ निश्चय का आभास पा कर चुप हो गई। पूर्णचन्द्र को देख-परख कर श्यामलाल का दृढ़ विश्वास हो गया कि इस नये युग में धनी परिवार में श्रेष्ठ वर का मिलना सरल नहीं है। पहले का ज़माना और था। उस समय पुत्र सदा पिता का आज्ञा-पालक रहता था। इसी कारण धनी होते हुए भी उसमें सद्‌गुण पूर्णतः वर्तमान रहते थे, किन्तु आधुनिक युग युवकों को स्वेच्छाचारिता की ओर ले जा रहा है। निर्धन युवक साधनों के अभाव में कुमार्ग की ओर उन्मुख नहीं हो पाते। यदि अपने परिश्रमोपार्जन द्वारा वे कभी धनी बन भी जाएँ तो भी उनके कुमार्गगामी होने की सम्भावना अधिक नहीं होती। उन्हें धन के महत्व का बोध होता है और वे उसके सदुपयोग में ही प्रवृत्त होते हैं। धनी पिता का पुत्र किसी अन्य व्यक्ति के परिश्रम से अर्जित धन को मिट्टी समझ कर उसका दुरुपयोग करता है। यद्यपि यह सत्य है कि सभी धनी पिताओं के पुत्र पूर्णचन्द्र जैसे नहीं होते। मेरे अपने भतीजे शतीशचन्द्र और धर्मचन्द्र धनी होते हुए भी सच्चरित्र हैं, किन्तु ऐसे उदाहरण धनी परिवारों में बहुत कम प्राप्त

होते हैं। इससे अच्छा है कि अपनी पुत्रियों के लिए निर्धन वर खोजे जाएँ। यदि भाग्य में धन होगा तो वे ही धनी हो जाएँगे, ऐसा श्यामलाल का विचार था।

जब उसने लक्ष्मी के समक्ष अपने उपर्युक्त विचार प्रकट किए तब वह हँस कर कहने लगी—"यदि तुम भाग्य को मानते हो तो फिर निर्धन और धनी के विषय में इतना सोच-विचार किस लिए करते हो? जो परिवार ठीक जँचता हो उसी में विवाह कर दो। चाहे धनी हो चाहे निर्धन। कन्या के भाग्य के अनुसार वैसा ही हो जाएगा।"

श्यामलाल ने शान्त भाव से उत्तर दिया—

"केवल मन की शान्ति के लिए ही मैं अपनी कन्याओं को निर्धन परिवार में देना चाहता हूँ। पूर्ण द्वारा किए गए अपने अपमान का स्मरण कर मैं यही चाहता हूँ कि पुनः हमारे परिवार में वह बात न दोहराई जाए। वैसे मुझे धन से कोई घृणा थोड़े ही है। यदि मेरे द्वारा अपनी कन्याओं के लिए चुने गए निर्धन वर भविष्य में धनी हो जाएँ तो मुझे प्रसन्नता ही होगी, क्योंकि उस स्थिति में उन्हें मेरे सामने धन पर अभिमान करने का साहस नहीं होगा।"

लक्ष्मी ने मुस्करा कर कहा—

"तुम जानो और तुम्हारा काम जाने, मुझे क्या चिन्ता? तुम जो कुछ भी करोगे, सब ठीक ही होगा।"

यह कह कर वह अपने घरेलू कार्यों में व्यस्त हो गई। इस प्रकार यह पूर्णतः निश्चित हो गया कि राधा का विवाह निर्धन परिवार में किया जाएगा।

श्यामलाल के बहनोई मेरठ में इंजीनियर थे। श्यामलाल ने उन्हें पत्र लिखा कि वे राधा के लिए किसी निर्धन परिवार में वर खोज कर उन्हें सूचित करें। बहन और बहनोई दोनों को यह पत्र पा कर

आश्चर्य हुआ। उन्होंने एक पत्र लिख कर इसका कारण पूछा। दूसरे पत्र में श्यामलाल ने उनकी जिज्ञासा को शान्त करते हुए लिखा—"जिस समय बहन परमेश्वरी की सगाई पिता जी ने तुम से की थी, उस समय तुम अनाथालय में रह कर इंजीनियरिंग की कक्षा में पढ़ रहे थे। मैंने इसका काफी विरोध किया था, किन्तु पिता जी ने तुम्हारी योग्यता का वर्णन कर मुझे शान्त कर दिया था। फिर भी मेरे मन से यह विचार न गया कि इतने धनी हो कर पिता जी एक अनाथालय के निर्धन लड़के से अपनी एक-मात्र पुत्री का विवाह कर रहे हैं। अब मैं समझता हूँ कि उन्होंने बिल्कुल ठीक किया था। आज तुम धनी भी हो और सच्चरित्र भी। बहन प्रत्येक प्रकार से तुम्हारे पास सुखी है। दूसरी ओर पूर्णचन्द्र का उदाहरण मेरे सामने है। वह धनी पिता का निरुद्यमी पुत्र था। आज कुव्यसनों में फँसने के कारण सम्पत्ति भी उसका साथ छोड़ रही है या शीघ्र ही छोड़ने वाली है। मुझे बड़ा दुख है कि धन के कारण मैं अपनी प्रिय पुत्री का जीवन इस प्रकार नष्ट कर बैठा। पिता जी होते तो कभी इस परिवार में उसका सम्बन्ध न करते। खैर, जो होना था सो तो हो गया। अब मैं अपनी शेष पुत्रियों का जीवन नष्ट नहीं करना चाहता। यही कारण है कि मैं राधा का विवाह निर्धन परिवार में करना चाहता हूँ।"

पत्र पढ़ कर श्यामलाल के बहनोई काफी प्रभावित हुए। उन्होंने अपने बी० ए० के एक सहपाठी का नाम और पता श्यामलाल के पास लिख कर भेज दिया। श्यामलाल स्वयं जा कर लड़के को देख आया। लड़का बी० ए० पास करने के पश्चात एक दफ्तर में हैड क्लर्क का कार्य करता था। ढाई सौ रुपए वेतन पाता था। लड़के के माँ-बाप जीवित नहीं थे। वह अपने चाचा के पास रहता था। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था। गोरा रंग, ऊँचा मस्तक और बलिष्ट शरीर! श्यामलाल को यह वर पसन्द आ गया। वह रुपया-नारियल देने की रस्म पूरी कर उस सम्बन्ध को पक्का करके ही घर लौटा।

घर आ कर जब श्यामलाल ने लक्ष्मी और घनश्याम को उपर्युक्त बातें बताईं तो उन्होंने आपत्ति की। लक्ष्मी को आपत्ति इस बात पर थी कि लड़का माता और पिता, दोनों के सुख से वंचित है। घनश्याम ने इस बात का विरोध किया कि लड़के के पास चल अथवा अचल किसी भी प्रकार की सम्पत्ति नहीं है। यदि कल को किसी कारण से नौकरी छूट जाए तो फिर क्या होगा? श्यामलाल ने दोनों को शान्त करते हुए कहा—

"लड़का इतना सुन्दर और होनहार है कि उस को देख कर तुम लोग सब बातें भूल जाओगे। मैं तो कहता हूँ कि राधा ने पिछले जन्म में बहुत पुण्य किए होंगे। इसीलिए उसे ऐसा वर मिला है। इतना सीधा-सादा है कि आज-कल के लड़कों की भाँति उसने अपनी भावी पत्नी को देखने की इच्छा प्रकट नहीं की। अभिमान नाम की कोई वस्तु तो उसमें है ही नहीं। देखते ही व्यक्ति उसकी ओर अकर्षित हो जाता है।"

घनश्याम ने सहसा कुछ स्मरण करते हुए कहा—

"तो भैया मैं देख ही न आऊँ। कल मुझे दुकान के लिए सामान खरीदने देहली जाना ही है। शाहदरा देहली से है ही कितनी दूर? पहले उसे देख लूँगा, फिर सामान खरीदने देहली चला जाऊँगा। भाभी को भी तसल्ली हो जाएगी और मेरा हृदय भी शान्त ह जाएगा।"

लक्ष्मी ने आग्रहपूर्वक कहा—

"हाँ-हाँ देवर! तुम जरूर देख कर आना। फिर मुझसे सब ठीक-ठीक कहना। यह भी पता लगाना कि लड़के के चाचा-चाची कैसे हैं? चाची कहीं कड़े स्वभाव की तो नहीं है? कहीं मेरी राधा को सदा रोन न पड़े!"

श्यामलाल ने मुस्करा कर कहा—

"यदि तुम देवर-भाभी को मेरा विश्वास नहीं होता तो ज़रूर देख आओ। घनश्याम ! तुम्हारी भाभी को तुम पर बड़ा भरोसा है। न हो तो तुम स्वयं ही चले जाओ। तुम्हारे सौन्दर्य को देख कर अपनी भावी पत्नी के सौन्दर्य का अनुभव लगा कर लड़का मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न होगा।"

लक्ष्मी ने मीठी झुँझलाहट से कहा—

"हटो भी, तुम्हें तो सदा मज़ाक सूझता रहता है। चलो, चल कर खाना खाओ।"

श्यामलाल और घनश्याम दोनों मुस्कराने लगे। श्यामलाल ने घनश्याम को लड़के के घर का पूरा पता लिख कर दे दिया और वह दूसरे दिन जाने का पक्का निश्चय कर अपने घर चला गया।

चौधरी इन दिनों श्यामलाल और घनश्याम के घरों में होने वाली घटनाओं को जानने के प्रयत्न में लगा रहता था। हरिराम को लगान बन्द किए चार मास हो चुके थे, किन्तु अभी तक श्यामलाल ने उसके घर लगान उगाहने के लिए पटवारी को नहीं भेजा था। चौधरी और श्यामलाल दोनों आश्चर्य चकित थे। उनकी समझ में ही नहीं आता था कि इसका क्या कारण हो सकता है। वे दोनों चाहते थे कि श्यामलाल जल्दी से जल्दी लगान लेने के लिए अपना आदमी भेजे तो हरिराम बीमारी का बहाना करे और फिर शीघ्र ही अपनी योजना को कार्यान्वित करें। चौधरी ने एक दिन श्यामलाल के नौकर से बातों ही बातों में पूछा।

"छोटे लाला जी आज-कल क्या करते रहते हैं ? कभी दिखाई नहीं देते"

नौकर ने बतलाया कि वे आज-कल राधा की सगाई की चिन्ता में हैं। अब चौधरी को पटवारी न भेजने का रहस्य समझ में आया। इन्हीं

दिनों उन्हें श्यामलाल के किसी पड़ोसी जाट ने समाचार दिया कि श्यामलाल शाहदरे में राधा के लिए लड़का रोक कर आया है और दूसरे दिन घनश्याम उसे देखने के लिए जाने वाला है। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए चौधरी ने इसे सुअवसर समझा। उसने तुरन्त हरिराम को बुला भेजा और उसके आ जाने पर प्रसन्न हो कर कहा—

"लो भाई, काम बन गया। तुम्हें जेल भिजवाने वालों का सर्वनाश समीप ही समझो।"

हरिराम कुछ समझ न सका। बोला—

"क्या बात हो गई, चौधरी जी ?"

चौधरी ने व्यंग्यात्मक स्वर से कहा—

"वाह यार ! तुम तो सोते रहते हो। बदला तुम्हें लेना है, चिन्ता मुझे है। मैं कह रहा था कि अब तुम शीघ्र ही श्यामलाल को मार सकोगे।"

हरिराम ने उत्सुक हो कर पूछा—

"कैसे, कोई नई बात हुई है क्या ?"

चौधरी ने मुस्करा कर कहा—

"हाँ, बिल्कुल नई, या यों कहो कि बिल्कुल पुरानी। सुनो, कल घनश्याम दो-तीन दिन के लिए हरिपुर से बाहर जा रहा है। बस इसी बीच में श्यामलाल को अपने घर तुम्हारा लगान चुकाने के बहाने बुलाऊँगा। तुम गँडासे के वार से पूरा लगान चुका देना।"

हरिराम ने चौंक कर कहा—

"क्या ? घर पर ही ? तुम तो कहते थे कि जंगल में ले जा कर अपना काम करेंगे ?"

चौधरी ने मुँह बना कर कहा—

"नहीं, उसमें बहुत दिक्कत है। फिर किसी ने देख लिया तो रंगे हाथों पकड़े जाएँगे। अतः मैंने सोचा है कि मेरे घर पर ही ठीक रहेगा। मार कर तुरन्त लाश को बोरी में भर कर रातों-रात कहीं दूर जंगल में फेंक आएँगे।"

हरिराम ने शंकित हो कर कहा—

"किन्तु तुम्हारी पत्नी, बच्चे, नौकर आदि तो यहीं होंगे। वे यदि किसी से कह दें तो।"

चौधरी ने मुस्करा कर कहा—

"तुम क्या मुझे काठ का उल्लू समझते हो? मैंने पहले ही सब इन्तजाम कर लिया है। पत्नी का भाई लेने आया हुआ है। वह सब बच्चों को ले कर आज शाम की गाड़ी से मायके जा रही है। मैंने असुविधा न हो, इस बहाने से दोनों नौकरों को भी उन्हीं के साथ भेजने के लिए कह दिया है। बस अब घर पर मैं ही हूँ। कोई कुछ भी न जान पाएगा।"

हरिराम ने कुछ प्रसन्न हो कर कहा—

"योजना तो तुम्हारी पक्की है चौधरी! किन्तु यह तो बताओ कि तुम्हें यह कैसे पता लगा कि कल घनश्याम यहाँ से जा रहा है।"

चौधरी ने मुस्कराते हुए मूछों पर हाथ फेर कर कहा—

"तुम मेरे चातुर्य की कहाँ तक प्रशंसा करोगे? एक-एक बात की खबर रखता हूँ, समझे?"

हरिराम ने प्रशंसात्मक रीति से कहा—

"सो तो है ही। तुम्हारे बल पर ही मैं इतना साहस करने को तैयार हुआ हूँ। नहीं तो इस ओर भूल कर भी रुख न करता। हाँ, यह तो तुमने बतलाया नहीं कि घनश्याम किस लिए और किस स्थान पर बाहर जा रहा है।"

चौधरी ने कुछ झूँझला कर कहा—

"यह जान कर तुम क्या करोगे ? तुम्हें आम खाने से मतलब है या पेड़ गिनने से ? बस तुम्हारे लिए इतना ही काफी है कि घनश्याम दो-तीन दिन तक हरिपुर में नहीं होगा। जब तक हम मामले को बिल्कुल ठीक कर लेंगे। आने पर वह कुछ भी नहीं जान पाएगा।"

हरिराम ने आग्रहपूर्वक कहा—

"आखिर क्या हर्ज है ? यदि तुम्हें पता है तो बता क्यों नहीं देते कि वह कहाँ जाएगा ? कोई विशेष कारण नहीं है तो भी जिज्ञासावश पूछना चाहता हूँ।"

चौधरी ने खीझ प्रकट करते हुए कहा—

"तुम एक नम्बर ज़िद्दी हो। भला व्यर्थ समय खोने से क्या लाभ ? पर मैं जानता हूँ कि तुम सुने बिना मानने वाले नहीं हो। बात यह है कि अपनी कन्या राधा के लिए श्यामलाल शाहदरे में एक वर खोज कर आया है। घनश्याम उसे देखने के लिए जाएगा। फिर वह दिल्ली जा कर दुकान के लिए सामान आदि खरीदेगा। इस प्रकार से उसे दो-चार दिन लग ही जाएँगे।"

हरिराम ने कुछ उदास हो कर कहा—

"तो क्या राधा का सम्बन्ध होने जा रहा है ? बड़ी भोली-भाली प्यारी लड़की है। मेरी शीला के बराबर है। जब छोटी थी तो नित्य हमारे घर उसके साथ खेलने आती थी। बेचारी कितनी अभागी है। एक ओर पति मिलेगा दूसरी ओर शीघ्र ही पिता सदा के लिए छिन जाएँगे।"

चौधरी ने कुछ क्रोध प्रकट करते हुए कहा—

"ओहो, बड़ी दया आ रही है ! तो मत मारो उसके पिता को। कोई तुम्हें विवश तो नहीं कर रहा। मुझे क्या है, मैं तो तुम्हारे प्रति-

शोध के लिए यह सब योजना बना रहा था। मुझे कौन-सा श्यामलाल से बैर है? भला आदमी है बेचारा! जब मिलता है, बड़े प्रेम से बोलता है......।"

हरिराम ने बीच में ही रोक कर कहा—

"तुम तो व्यर्थ नाराज़ हो रहे हो चौधरी! भला मैंने कब कहा है कि मैं श्यामलाल को नहीं मारूँगा। जो कुछ भी मैंने पहले कहा था वह राधा के लिए कहा था। राधा के प्रति मुझे सहानुभूति है तो उसके पिता के प्रति तो नहीं है। वह भोली है तो क्या, उसका पिता तो भोला नहीं है। जैसा किया है वैसा ही भोगे। मेरा इसमें क्या दोष? मुझे जेल न भिजवाया होता तो मैं भी उसे मारने की न सोचता, किन्तु अब तो मैं किसी प्रकार अपना निश्चय नहीं बदल सकता। तुम निश्चिन्त-रहो।"

चौधरी के मुख पर प्रसन्नता की लहर पुनः दौड़ गई। बोला—

"बस फिर अब जाओ। कल सायँकाल सात बजे के लगभग आ जाना और हाँ, छिपते-छिपते आना। साथ में गँडासा अवश्य लेते आना। मैं आज ही अपने पुत्र द्वारा श्यामलाल के घर पर कहलवाए देता हूँ कि कल साढ़े छः बजे के लगभग वह मेरे घर आ कर तुम्हारा लगान ले जाए। ठीक है न?"

हरिराम ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया और दूसरे दिन आने का वचन दे कर चला गया।

चौधरी ने अपने पुत्र द्वारा श्यामलाल के घर पर लगान ले जाने के लिए कहलवाया तो उसने उत्तर भिजवा दिया कि आज-कल व्यस्त है और हरिराम के ठीक हो जाने पर ही लगान ले लेगा। चौधरी ने देखा कि इस प्रकार तो सब बना-बनाया काम बिगड़ जाएगा। अतः वह स्वयं उसी सायँकाल को श्यामलाल के घर गया। उसने उससे आग्रहपूर्वक कहा कि वह दूसरे दिन आ कर उससे रुपए अवश्य ले लें। अन्यथा

यदि रुपए खर्च हो गए तो फिर पता नहीं कि वह हरिराम का कर्ज़ा कब चुका पाएगा।

श्यामलाल ने कुछ अन्यमनस्क भाव से कहा—

"यदि तुम लगान देने के लिए इतना अधिक आग्रह कर रहे हो तो फिर मैं आ जाऊँगा, पर कल क्यों ? आज ही क्यों न दे दो ? अब तो मैं फुर्सत में हूँ। कल पता नहीं उस समय कोई काम पड़ जाए।"

चौधरी ने मुख पर बनावटी उदासी का भाव लाते हुए कहा—

"क्या करूँ, चाहता तो मैं भी यही था कि आज ही इस कर्ज से मुक्ति पा लूँ। लाला जी ! कर्ज छाती पर रखा रहता है तो मन पर एक भारी चिन्ता सवार रहती है, किन्तु आज बाल-बच्चे अपने नाना के यहाँ जा रहे हैं। उन्हें स्टेशन पहुँचा कर गाड़ी में बैठा कर लौटूँगा तो रात के दस बजेंगे। ऐसे समय रुपए का लेन-देन थोड़े ही हुआ करता है। फिर कल प्रातः काल में किसी काम से एक मित्र के यहाँ जाऊँगा। वहाँ से मैं शाम को छः बजे लौट कर आऊँगा। इसी लिए मैंने आपसे सात बजे आने के लिए कहा है।"

श्यामलाल ने कहा—"अच्छा यदि यह बात है तो मैं अवश्य आने का समय निकाल लूँगा। यदि न आ सका तो पटवारी को भेज दूँगा। उसे हिसाब करके दे देना।"

चौधरी ने शीघ्रतापूर्वक कहा—

"न-न पटवारी को न भेजना। आपका पटवारी कई बार हम लोगों का अपमान कर चुका है। उससे मैं बात भी करना नहीं चाहता। आप स्वयं ही आइएगा। भले आदमियों का भले आदमियों से ही बातचीत करने को मन करता है।"

श्यामलाल चौधरी की आत्मप्रशंसा के इस ढँग पर मुस्कराया और बोला—

"अच्छा चौधरी साहब मैं ही आ जाऊँगा। अब तो प्रसन्न हो।"

चौधरी ने ऊपर से तो कोई विशेष प्रसन्नता नहीं दिखलाई, किन्तु मन में वह इतना प्रसन्न था मानों उसे कुबेर का खज़ाना मिल गया हो। श्यामलाल को कुछ आश्चर्य हुआ कि यह आदमी रुपया देने के लिए इतना आग्रहशील क्यों है? लोग तो रुपया देने के नाम पर ऐसा मुँह चुराते हैं कि पकड़े जाने पर उनके मुँह से बोल भी नहीं निकलते। फिर चौधरी क्या सबसे निराला है? हो सकता है उस दिन जाटों ने लगान के कारण जब मार-पीट की थी तब यह व्यक्ति घटना-स्थल पर उपस्थित नहीं था। बाद में भी इसने उसमें कोई भाग नहीं लिया, किन्तु कई बार हमारे नौकरों ने सूचना दी थी कि चौधरी के घर पर हमारे विरुद्ध जाटों की सभा हुई थी। सम्भव है कि चौधरी के बड़े घर के होने के कारण जाटों ने उसे विवश किया हो। फिर भी वह कीचड़ में उत्पन्न होने वाले कमल-पत्र की भाँति निर्लिप्त है, नहीं तो उस दिन मार-पीट के दिन सब जाटों के साथ वह अवश्य उपस्थित होता और सर्वाधिक उत्पात करता। आदमी हृदय का सच्चा है। इसी कारण तो उसे कर्ज़ भार के समान प्रतीत हो रहा है और वह अति शीघ्र उससे छुटकारा पाने के लिए व्याकुल है। चलो यह भी अच्छा है कि हरिराम से लगान वसूल करने के लिए हमें अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। लक्ष्मी स्वयं हमारे चरणों का चुम्बन करने को व्याकुल है, फिर हमें क्या चिन्ता? कल मैं अवश्य ठीक समय पर जा कर हिसाब बता कर रुपए ले आऊँगा।

दूसरे दिन घनश्याम प्रातःकाल होते ही शाहदरे के लिए रवाना हो गया। चौधरी ने उसे स्टेशन की ओर जाते हुए देखा तो ईश्वर को शतशः धन्यवाद दिया। उसे रात को सहसा यह चिन्ता हो गई थी कि यदि घनश्याम अपने जाने का विचार स्थगित कर दे तो उसकी सारी योजना मिट्टी में मिल जाएगी। फिर हो सकता है कि श्यामलाल सायँकाल के समय अकेला न आ कर घनश्याम को भी साथ ले आए।

तब दोनों को एक साथ मारना कठिन हो जाएगा। और क्या पता कि उस अवस्था में वे ही दोनों मिल कर हमें समाप्त कर दें। घनश्याम काफी बलिष्ट और फुर्तीला है। यदि श्यामलाल उसे साथ न भी लाया तो भी श्यामलाल की हत्या के समय घनश्याम की हरिपुर में उपस्थिति हमारे लिए हानिकारक सिद्ध होगी। रात को दस बजे तक श्यामलाल यदि न लौटा तो घनश्याम सीधा दो-तीन नौकरों के साथ मेरे घर आ धमकेगा। यदि उसे हत्या का कोई चिन्ह मिल गया तो मेरी खैर नहीं है। हरिराम तो काम करके साफ निकल जाएगा, क्योंकि उसने बीमारी का बहाना बनाया हुआ है, किन्तु मैं व्यर्थ में मारा जाऊँगा। इसी कारण उसे सारी रात यह चिन्ता व्यथित करती रही थी कि पता नहीं कल घनश्याम जाएगा अथवा नहीं। दूसरे दिन प्रात:काल जब उसने अपनी आँखों से घनश्याम को जाते हुए देख लिया तो उसने शान्ति की साँस ली।

× × ×

हरिराम छः बजने से कुछ देर पहले ही चौधरी के घर पहुँच गया। उसने एक बोरी को भूसी से भर कर बीच में गंडाँसा रख लिया जिस से किसी को कुछ भी सन्देह न हो सके। चौधरी के पास जमीन नहीं थी। बीस भैंस थीं। उन्हीं का दूध बेच कर वह अपना गुज़ारा करता था। भैंसों के लिए चारा उसे मूल्य दे कर खरीदना पड़ता था। हरिराम ने चारा लाने वाले का वेष बना कर भूसी की बोरी ले कर चौधरी के घर में प्रवेश किया। चौधरी आज जल्दी ही भैंसों को दुह चुका था और दूध भी जिन्हें लेना था ले जा चुके थे। जब हरिराम ने अन्दर प्रवेश किया तब वह विचारों में लीन बैठा हुआ था। उसने हरिराम के वेष को देख कर उसे चारा बेचने वाला मनई समझ कर कहा—

"क्यों मनई, आज दुबारा भूसी क्यों लाए हो? सुबह तो दे गए थे।"

यह सुनते ही हरिराम खिलखिला कर हँस पड़ा और बोला—

"वाह चौधरी ! तुममें आदमी को पहचानने की बड़ी तीव्र शक्ति है। वेष बदलने से क्या मेरी आकृति भी मनई के ऐसी हो गई है क्या ?"

चौधरी ने चौंक कर कहा—

"अरे हरिराम, तुम और इस वेष में ? यह तुमने बहुत अच्छा किया। अब कोई तुम्हें मार्ग में पहचान न सका होगा, क्योंकि सब कामों में व्यस्त रहते हैं। आकृति पर कौन ध्यान देता है ? मुझे ही देख लो। अपने विचारों में इतना खोया हुआ था कि केवल वेष ही देख कर तुम्हें मनई समझ लिया। आकृति देखी भी नहीं।"

हरिराम ने मुस्करा कर कहा—

"तुमने कल कहा था न कि छिप कर आना। अब देख लो छिप कर ही आया हूँ। मेरा विश्वास है कि किसी को इस बात का पता नहीं है कि मैं इस समय तुम्हारे घर हूँ। यहाँ तक कि मेरी पत्नी और बाल-बच्चों को भी कुछ पता नहीं है। उनसे मैं कह आया हूँ कि किसी मित्र से मिलने जा रहा हूँ। देर से लौटूँगा।"

चौधरी ने कुछ चिन्तित हो कर कहा—

"और सब तो ठीक है, किन्तु तुम गँडासा तो लाए नहीं। मेरा गँडासा तो दो-तीन दिन हुए मेरे भाई के यहाँ गया है। अब क्या होगा ?"

हरिराम यह सुन कर खिलखिला कर हँसने लगा। चौधरी ने झुँझला कर कहा—

"इसमें हँसने की क्या बात है ? गँडासे के बिना और किस वस्तु से तुम उसे एक दम मार सकोगे ?"

हरिराम ने उसी प्रकार हँसते हुए कहा—

"तुम में गूढ़ बातों को पहचानने की शक्ति जरा भी नहीं है,

चौधरी ! यह देखो ।" कह कर उसने भुस की बोरी उलट दी और उस में से चमकता हुआ गँडासा निकल पड़ा । चौधरी की आँखें यह देख कर प्रसन्नता से चमक उठीं । हरिराम ने कुछ गर्व का-सा भाव दिखाते हुए कहा--

"तुम क्या मुझे इतना मूर्ख समझते थे चौधरी जी, इतना भारी भूसी का बोरा यों ही बिना किसी कारण के पीठ पर लाद कर साथ ले आता । कुशल व्यक्ति का कोई भी कार्य रहस्य से शून्य नहीं होता, समझे !"

और कोई समय होता तो चौधरी हरिराम जैसे अदना से आदमी की इस आत्म-प्रशंसा को सुन कर मुँह-तोड़ उत्तर देता, किन्तु इस समय अपने मन की समस्या को सहज ही सुलझते देख कर उसका मन अत्यन्त प्रसन्न था । अतः वह उसकी आत्म-प्रशंसा का मानो समर्थन करता हुआ बोला--

"निश्चय ही तुम अत्यन्त कुशल व्यक्ति हो, हरिराम ! तुम्हारे चातुर्य का सिक्का आज पूरी तरह मेरे मन पर बैठ चुका है ।"

हरिराम ने अपनी प्रशंसा से प्रसन्न हो कर बनावटी ऊबने का भाव दिखाते हुए कहा—

"यह तो खैर सब हुआ, चौधरी ! अब तुम यह बतलाओ कि मेरे शिकार के आने में कितनी देर है ? तुमने उससे कब आने के लिए कहा था ?"

चौधरी ने चिन्तित हो कर सामने की घड़ी की ओर देख कर उत्तर दिया--

"मैंने तो सात बजे आने के लिए कहा था, किन्तु अब तो सवा सात बज रहे हैं । कहीं वह न आया तो ?"

"न आया तो न सही । तुम व्यर्थ क्यों चिन्तित हो जाते हो । अभी बेचारे के भाग्य में कुछ और जीना हुआ तो आज नहीं आएगा, किन्तु

अधिक दिन तो जी नहीं सकता। जब हरिराम ने उसे मारने का निश्चय ही कर लिया है तो दो-तीन दिन ठहर कर समाप्त कर दूँगा। आखिर बकरे की माँ कब तक खैर.........।"

उसी समय बन्द द्वार पर एक ज़ोर की थाप पड़ी। हरिराम ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—

"लो भई, शिकार के दिन पूरे हो गए। वह आ गया है। मैं इसी कमरे में छिप रहता हूँ। तुम जा कर उसे सबसे ऊपर बरसाती में लिवा ले जाओ.........।"

चौधरी ने बात काट कर कहा—

"नहीं-नहीं, तुम बरसाती में जाओ। उसे यहीं पर बुलाऊँगा। पीछे उसकी लाश को बरसाती से कौन ढो कर लाएगा ?"

हरिराम ने शीघ्रतापूर्वक कहा—

"नहीं, यहाँ ठीक नहीं है। यहाँ पर किसी के कान में भनक पड़ गई तो ठीक नहीं होगा। मैं सब कर लूँगा। तुम चिन्ता न करो। शीघ्र जा कर दरवाज़ा खोल दो।"

अब तक द्वार पर दस-बीस थाप पड़ चुकी थीं। चौधरी ने जा कर दरवाज़ा खोला तो अपनी आशा के विपरीत हरिराम के भाई धनीराम को खड़ा पाया। इस प्रकार रंग में भंग होते देख कर चौधरी के मुख का रंग उड़ गया। हकलाता हुआ बोला—

"किया.......क्या बात है धनीराम ?"

धनीराम ने बिना कुछ उत्तर दिए प्रश्न करते हुए कहा—

"हरिराम है यहाँ ?"

चौधरी ने घबरा कर कहा—

"हरिराम ! हरिराम तो यहाँ नहीं है । अपने घर होगा । यहाँ हरिराम का क्या काम ?"

चौधरी की घबराहट देख कर धनीराम अपनी हँसी न रोक सका । हँसते हुए बोला—

"तुम तो ऐसे घबरा रहे हो चौधरी ! जैसे कत्ल करने पकड़े गए हो । मुझे हरिराम भैया से काम था । मैं उसके घर गया था तो पता लगा कि अपने किसी मित्र के यहाँ गए हैं । मैंने सोचा कि तुम्हारे यहाँ पूछता चलूँ क्योंकि तुम उनके परम मित्र हो ।"

चौधरी की घबराहट कुछ शान्त हुई । आश्वस्त हो कर बोला—

"नहीं, वह यहाँ नहीं आया । मैं तुम्हारे आने के पूर्व सोया हुआ था, इसीलिए अब घबराया हुआ-सा था ।"

धनीराम जाते हुए बोला—

"क्षमा करना, मैंने तुम्हारी निद्रा व्यर्थ ही में भंग की ।"

चौधरी ने कोई उत्तर नहीं दिया । उसकी दृष्टि सामने की ओर से आते हुए श्यामलाल की ओर चली गई थी । उसका हृदय प्रसन्नता और होने वाली घटना के भय से धड़कने लगा । श्यामलाल के समीप आने पर उसने उसे आदर से नमस्कार किया । श्यामलाल ने क्षमा माँगते हुए कहा—

"माफ़ करना चौधरी ! तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी । वास्तव में मैं आ तो सात बजे ही रहा था, किन्तु उसी समय एक मित्र आ गया । बात-चीत करते-करते देर हो गई । उसके जाते ही सीधा चला आ रहा हूँ ।"

चौधरी ने शीघ्रतापूर्वक कहा—

"कोई बात नहीं, लाला जी ! बड़े आदमियों के साथ ऐसी ही

अधिक दिन तो जी नहीं सकता। जब हरिराम ने उसे मारने का निश्चय ही कर लिया है तो दो-तीन दिन ठहर कर समाप्त कर दूँगा। आखिर बकरे की माँ कब तक खैर.........।"

उसी समय बन्द द्वार पर एक ज़ोर की थाप पड़ी। हरिराम ने अत्यन्त प्रसन्न हो कर कहा—

"लो भई, शिकार के दिन पूरे हो गए। वह आ गया है। मैं इसी कमरे में छिप रहता हूँ। तुम जा कर उसे सबसे ऊपर बरसाती में लिवा ले जाओ.........।"

चौधरी ने बात काट कर कहा—

"नहीं-नहीं, तुम बरसाती में जाओ। उसे यहीं पर बुलाऊँगा। पीछे उसकी लाश को बरसाती से कौन ढो कर लाएगा?"

हरिराम ने शीघ्रतापूर्वक कहा—

"नहीं, यहाँ ठीक नहीं है। यहाँ पर किसी के कान में भनक पड़ गई तो ठीक नहीं होगा। मैं सब कर लूँगा। तुम चिन्ता न करो। शीघ्र जा कर दरवाज़ा खोल दो।"

अब तक द्वार पर दस-बीस थाप पड़ चुकी थीं। चौधरी ने जा कर दरवाज़ा खोला तो अपनी आशा के विपरीत हरिराम के भाई धनीराम को खड़ा पाया। इस प्रकार रंग में भंग होते देख कर चौधरी के मुख का रंग उड़ गया। हकलाता हुआ बोला—

"किया.........क्या बात है धनीराम?"

धनीराम ने बिना कुछ उत्तर दिए प्रश्न करते हुए कहा—

"हरिराम है यहाँ?"

चौधरी ने घबरा कर कहा—

"हरिराम ! हरिराम तो यहाँ नहीं है ।. अपने घर होगा । यहाँ हरिराम का क्या काम ?"

चौधरी की घबराहट देख कर धनीराम अपनी हँसी न रोक सका । हँसते हुए बोला—

"तुम तो ऐसे घबरा रहे हो चौधरी ! जैसे कत्ल करते पकड़े गए हो । मुझे हरिराम भैया से काम था । मैं उनके घर गया था तो पता लगा कि अपने किसी मित्र के यहाँ गए हैं । मैंने सोचा कि तुम्हारे यहाँ पूछता चलूँ क्योंकि तुम उनके परम मित्र हो ।"

चौधरी की घबराहट कुछ शान्त हुई । आश्वस्त हो कर बोला—

"नहीं, वह यहाँ नहीं आया । मैं तुम्हारे आने के पूर्व सोया हुआ था, इसीलिए अब घबराया हुआ-सा था ।"

धनीराम जाते हुए बोला—

"क्षमा करना, मैंने तुम्हारी निद्रा व्यर्थ ही में भंग की ।"

चौधरी ने कोई उत्तर नहीं दिया । उसकी दृष्टि सामने की ओर से आते हुए श्यामलाल की ओर चली गई थी । उसका हृदय प्रसन्नता और होने वाली घटना के भय से धड़कने लगा । श्यामलाल के समीप आने पर उसने उसे आदर से नमस्कार किया । श्यामलाल ने क्षमा माँगते हुए कहा—

"माफ़ करना चौधरी ! तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ी । वास्तव में मैं आ तो सात बजे ही रहा था, किन्तु उसी समय एक मित्र आ गया । बात-चीत करते-करते देर हो गई । उसके जाते ही सीधा चला आ रहा हूँ ।"

चौधरी ने शीघ्रतापूर्वक कहा—

"कोई बात नहीं लाला जी ! बड़े आदमियों के साथ ऐसी ही

कठिनाइयाँ रहती हैं। आओ ऊपर चल कर आराम से बैठ कर बातें करेंगे।"

यह कहते-कहते चौधरी बड़े प्रेम से श्यामलाल को ऊपर लिवा ले गया। वहाँ पहले से ही चारपाईयाँ बिछी हुई थीं। चौधरी ने श्यामलाल को इस प्रकार बैठाया कि कमरे के दरवाजे की ओर उसकी पीठ हो गई। चौथरी स्वयं उसके सामने की चारपाई पर बैठ गया। थोड़ी देर इथर-उधर की बातें होती रहीं। फिर चौधरी ने कहा—

"आप बैठें ! मैं अभी आता हूँ। आपके लिए हुक्का लेता आऊँ।"

श्यामलाल ने अस्वीकार करते हुए कहा—

"नहीं भाई, मैं हुक्का नहीं पिया करता। मुझे ज़रा जल्दी जाना है। तुम जल्दी ही हिसाब कर लो तो मैं जाऊँ।"

चौधरी ने उसकी बात काट कर कहा—

"अजी ऐसी भी क्या बात है, लाला जी ! हुक्का नहीं पीते तो कुछ पानी-वानी तो पीओगे। बस एक मिनट ठहो ! अभी आता हूँ।"

यह कह कर बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए चौथरी नीचे चला गया। दस मिनट के पश्चात् वह एक गिलास पानी और एक तश्तरी में थोड़ी मिठाई ले कर लौटा और श्यामलाल के पास रख कर बोला—

"थोड़ा खा-पी लो। फिर लेन-देन की बातें होंगी।"

श्यामलाल ने कहा—

"नहीं भैया, तुम क्यों तकलीफ करते हो ? मैं तो अभी भोजन कर के आ रहा हूँ।"

चौधरी ने प्रार्थना के स्वर में कहा—

"अजी सेठ जी, हम गरीबों का रूखा-सूखा भी ज़रा चख लो। ऐसा हमने क्या अपराध किया है जो हमारे घर का पानी भी आप नहीं पी रहे ?"

श्यामलाल ने लज्जित हो कर कहा—

"तुम तो बुरा मान गए चौधरी ! तुम गरीब कहाँ से हो ? सबसे अमीर हो । लाओ तुम दुखी हो रहे तो थोड़ा खा ही लेता हूँ, किन्तु मुझे भूख ज़रा भी नहीं है ।"

श्यामलाल ने धीरे-धीरे तश्तरी में से ले कर खाना प्रारम्भ कर दिया । दो बार खाने के पश्चात् तीसरी बार ज्यों ही उसने तश्तरी में हाथ डाला त्यों ही हरिराम ने विद्युत गति से प्रवेश कर गँडासे का भरपूर हाथ श्यामलाल की गर्दन पर मारा । गर्दन कट कर अलग जा पड़ी । रुधिर का फव्वारा बह निकला और श्यामलाल की लोक-लीला समाप्त हो गई । चारपाई पर बिछी हुई चादर रुधिर से लाल हो गई । कमरे का फर्श भी खून से लथपथ था । यह देख कर चौधरी एक दम घबरा गया । शीघ्रता से बोला—

"हरिराम जल्दी नीचे जा कर भूसी की खाली बोरी ले आओ । साथ में थोड़ी भूसी भी लेते आना । जल्दी करो, कोई आ गया तो रंगे-हाथों पकड़े जाएँगे ।"

हरिराम का विवेक इस समय शून्य हो गया था । वह अपना काम कर चुका था । अब उसकी सोचने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी । अतः जैसे-जैसे चौधरी कहता गया वह वैसे ही वैसे करता गया । दोनों ने मिल कर लाश को बोरी में डाल कर ऊपर से काफी भूसी डाल दी । फिर नीचे से पानी ला-ला कर दोनों ने मिल कर कमरे को पोंछा और फिर धोया । गँडासे को भी धो लिया । खून की चादर और खून से लिप्त कमरा पोंछने के कपड़े को जला दिया गया । रात के दस बजे के लगभग हरिराम पहले की भाँति भूसी बेचने वाले का वेष बना कर

बोरी पीठ पर लाद कर चौधरी के घर से निकल कर जँगल की ओर बढ़ा। उसके जाने के थोड़ी देर बाद चौधरी भी अपने घर से निकल कर उसी दिशा में बढ़ा। दोनों ने मिल कर लाश को गाँव से दूर के एक कुएँ में फेंक दिया और फिर अपने घर लौट आए। हरिराम ने गँडासा चौधरी के घर ही रहने दिया और दूसरे दिन ले जाने का वचन दे कर अपने घर चला गया।

नौ

जिस समय हरिराम ने श्यामलाल को मौत के घाट उतारा ठीक उसी समय श्यामलाल के घर में जलता हुआ दीपक सहसा बुझ गया। इस अपशकुन को देख कर लक्ष्मी का हृदय धक् से रह गया। जिस समय लक्ष्मी के पिता की हृदय-रोग से सहसा मृत्यु हो गई थी उस समय भी उसके मायके के घर में जलता हुआ दीप एकाएक बुझ गया था। इसी कारण लक्ष्मी का हृदय श्यामलाल के अनिष्ट की आशंका से बेचैन हो गया। श्यामलाल जाते समय कह गया था कि वह चौधरी के घर से रुपये लेने के उपरान्त दो-तीन जगह और हो कर तब घर आयेगा। इसलिए नौकर को उसे खोजने के लिये भेजना व्यर्थ था क्योंकि पता नहीं कि इस समय वह कहाँ होगा। फिर भी लक्ष्मी का मन भोजन करने में नहीं लग सका। खाना परोस कर खाने बैठी, किन्तु दो ग्रास से अधिक न खा सकी। शेष भोजन उसने कुत्ते को डाल दिया और भीतर अन्धकार में जा कर एक चारपाई पर भारी मन से लेट गई। उसे इतनी भी सुध नहीं रही कि बुझते दीपक को पुनः जला देती। राधा ने ही आ कर दीपक को पुन: जलाया।

लक्ष्मी को अन्धेरे में लेटे-लेटे काफी देर हो गई तो राधा को बड़ा आश्चर्य हुआ कि आखिर आज माता जी बिना कुछ कहे कहाँ चली गई हैं। छत पर सीता और अहिल्या सोई हुई थीं। उसने वहाँ जा कर देखा। लक्ष्मी वहाँ नहीं मिली। फिर वह नीचे एक-एक कमरे में जा कर खोजने लगी। सबसे अन्दर के कमरे में उसने जा कर

देखा कि अन्धकार में कोई चारपाई पर बिना बिस्तर बिछाए हाथों में मुँह छिपाए लेटा हुआ है। उसने ध्यान से देख कर जान लिया कि वह उसकी माता जी ही हैं। उसने कुछ घबराहट के साथ पुकारा—"माता जी !"

लक्ष्मी ने दोनों हाथ मुँह पर से हटा कर कहा—

"अरे राधा, तू अब तक सोई नहीं ? जा ऊपर जा कर सो जा ।"

राधा ने इसका कुछ उत्तर न दे कर प्रश्न करते हुए कहा—

"तुम यहाँ गर्मी और अन्धेरे में क्यों लेटी हुई हो माता जी ? ऊपर छत पर चलो न !"

लक्ष्मी ने भर्राई आवाज को भरसक सामान्य बनाते हुए कहा—

"मेरा मन अभी यही लेटने को कर रहा है, बेटी ! तुम जा कर सीता और अहिल्या के पास सो जाओ। वे दोनों अकेली होंगी। तुम्हारे पिता जी आने वाले होंगे। हम भी ऊपर आ जाएँगे।"

राधा ने कुछ स्मरण करते हुए कहा—

"पर वह तो देर से लौटने को कह गए हैं। अभी तो कुल नौ बजे हैं। पता नहीं वह कब आएँ ? तब तक तुम गर्मी में ही लेटी रहोगी ? ऊपर चल कर ही क्यों न लेट जाओ ?"

लक्ष्मी ने अनिच्छापूर्वक उत्तर देते हुए कहा—

"नहीं राधा, ज़िद न कर। चुपचाप ऊपर जा कर सो। मैं अभी नहीं चलूँगी।"

राधा समझ गई कि अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। वह एक दीपक जला कर वहाँ रख गई और चुपचाप छत पर जा कर अपनी चारपाई पर पड़ गई। लाख प्रयत्न करने पर भी उसे नींद नहीं आई। सीता और अहिल्या कब की सो चुकी थीं। अतः उसे इतनी बड़ी छत पर

अकेली लेटना बड़ा विचित्र सा लग रहा था। वह मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि उसके पिता शीघ्र ही लौट आएँ तो माता जी और पिता जी ऊपर आएँ और वह शीघ्र ही हृदय की बेचैनी से छुटकारा पा कर निद्रा देवी की गोद में विश्राम कर सके।

ज्यों-ज्यों देर होती जाती थी त्यों-त्यों लक्ष्मी का हृदय जैसे फटता जा रहा था। उसने उठ कर घड़ी देखी तो उसका रक्त जम-सा रहा था। पूरे १२ बज चुके थे और श्यामलाल का कहीं पता नहीं था। चाहे कितना ही आवश्यक काम रहा हो, फिर भी श्यामलाल १० बजे से अधिक देर तक कभी बाहर नहीं रहा था। फिर आज क्या बात हो गई। दीपक बुझने के अपशकुन ने मानो विशाल रूप धारण कर उसके मन को ढक लिया। वह तुरन्त ऊपर गई। देखा तो सीता, अहिल्या और राधा तीनों सोई हुई थीं। उसने आठ वर्ष की सीता को झकझोर कर जगाया। सीता हड़बड़ाकर उठ बैठी और बोली—"क्या है, अम्मा ?"

लक्ष्मी ने तुरन्त कहा—

"जल्दी उठो ! गउओं वाले घेर में जा कर बुन्दू और मक्खन को जगा कर लाओ। तुम्हारे पिताजी अभी तक नहीं आए हैं। वे उन्हें ढूँढ़ कर लाएँगे। दौड़ कर जाना और जल्दी ही लौट कर आना। समझी ?"

ज्यों ही लक्ष्मी ने सीता को जगाया त्यों ही राधा की निद्रा भंग हो गई। उसे सोये हुए केवल एक घण्टा ही हुआ था और वह भाँति-भाँति के स्वप्न देख रही थी। सीता को जगाते समय उसकी नींद तो खुल गई थी किन्तु वह चुपचाप आँखें बन्द करके लेटी रही थी। लक्ष्मी की बात सुन कर उसने तुरन्त आँखें खोल दीं और बैठते हुए बोली—"क्या अभी तक नहीं आए ? कितने बजे होंगे माँ ?"

लक्ष्मी ने कहा—"बारह बज चुके हैं। इसी लिए तो कह रही हूँ। सीता जल्दी कर, ऊँघ क्या रही है?"

सीता अलसाई हुई उठ रही थी, किन्तु नींद अभी आँखों में भरी थी। अतः आँखें मिचो-मिची जा रही थीं। माँ की फटकार सुन कर उसका आलस्य दूर हो गया और वह जल्दी-जल्दी नीचे जाने लगी। माँ को भी सीता के पीछे-पीछे नीचे जाते देख कर राधा ने कहा—

"माता जी, सीता तो छोटी है। अन्धेरे में कहाँ जाएगी। मैं चली जाती हूँ। बहुत जल्दी आऊँगी।"

लक्ष्मी ने जाते-जाते कहा—

"नहीं, तुम यहीं लेटो। जवान लड़कियाँ रात को बाहर नहीं जाया करतीं।"

श्यामलाल के पास पाँच भैंसे और पाँच गाएँ थीं। घर से कुछ दूर एक विशालकाय घेर था। उसी में वे सब रहती थीं। उसके भीतर दो कमरे थे जिनमें उसके नौकर सोते थे और रात के समय नींद खुलने पर उन्हें चारा-पानी देते रहते थे। सीता दिन में २० बार रोज़ वहाँ के चक्कर लगाया करती थी। अतः उसके लिए वह मार्ग अत्यन्त परिचित था। वह शीघ्र ही वहाँ पहुँच गई। माँ ने तो केवल दो विशेष नौकरों को उठाने के लिए कहा था, किन्तु अन्धकार में भली-भाँति पहचान में न आने के कारण उसने सभी नौकरों को उठा दिया। श्यामलाल के घर के तीनों नौकर और तीन दुकान के नौकर वहाँ सोते थे। दुकान के शेष नौकर अपने-अपने घर जा कर सोते थे। सीता ने सबसे पहले जिसे उठाया वह घर का नौकर बुन्दू था। पहले तो उसने कुछ आलस्य दिखाया, किन्तु जब सीता ने बतलाया कि पिता जी अभी तक नहीं आए हैं और उन्हें देख कर लाना है तो वह तुरन्त उठ बैठा। सीता ने और उसने मिल कर सब नौकरों को जगा दिया। श्यामलाल के अभी न लौटने

की बात सुन कर सभी घबरा गए और अपनी-अपनी लाठियाँ सम्हाल कर सीता के साथ हो लिए ।

जब से सीता गई थी तभी से लक्ष्मी छज्जे में खड़ी हो कर उसके और नौकरों के आने की राह देख रही थी । कुछ देर बाद उसने दूर से आती हुई कुछ छाया-मूर्तियों को देखा तो उसे कुछ आश्वासन मिला । वह पहचान गई कि सीता और छहों नौकर हैं । शीघ्र ही वे घर में आ पहुँचे । लक्ष्मी ने बुन्दू को चौधरी के घर भेजा और शेष पाँचों को भी श्यामलाल के परिचितों के नाम बतला कर इधर-उधर भेज दिया एक घन्टे बाद सब नौकर लौट आए । बुन्दू ने बतलाया कि चौधरी ने कहा है कि लाला जी आए तो थे, किन्तु ७ बजे आए थे और रुपये ले कर दस-पन्द्रह मिनट बाद चले गए थे । शेष पाँचों नौकरों को यही उत्तर मिला कि लाला जी उस दिन उनके घर नहीं आए । रात के दो बज चुके थे । लक्ष्मी निराश हो कर रोने लगी । बुन्दू अत्यन्त स्वामी-भक्त नौकर था । उसने स्वामिनी को धैर्य बँधाते हुए कहा—

"रोओ मत, बीबी जी । सुबह होते ही हम फिर ढूँढ़ने जाएँगे । कहो तो सतीश और धर्म बाबू को जगा कर ले आएँ । शायद वे पता लगा लें ?

लक्ष्मी ने हाथ के संकेत से रोकते हुए कहा—

"नहीं भैया, रहने दो । वे बेचारे रात को कहाँ मारे-मारे फिरेंगे । पता-ठिकाना हो तो भेजूँ भी । बिना पते के तो जैसे तुम निराश हो कर लौट आए हो वैसे ही वे दोनों लौट आएँगे । सुबह देखा जाएगा ।"

वह रात सबने आँखों में ही काट दी । लक्ष्मी कभी निराश हो कर रोने लगती थी और कभी नौकरों की धैर्य बँधाने वाली बातों पर आशा की झलक पा कर चुप हो जाती थी । प्रातः काल होते ही सब नौकरों ने मिल कर हरिपुर के एक-एक घर में पूछ लिया, किन्तु कहीं से आशाजनक उत्तर नहीं मिला । चौधरी के आस-पास रहने वाले एक-

दो दुकानदारों ने यह बतलाया कि उन्होंने सायँकाल के समय श्यामलाल को चौधरी के घर जाते देखा था, किन्तु वह कब वहाँ से लौटे इसका उन्हें पता नहीं था। चौधरी का केवल एक ही उत्तर था कि वह रुपये ले कर शीघ्र ही घर की ओर चले गए थे। बात की बात में यह समाचार सारे हरिपुर में फैल गया कि श्यामलाल कल रात से लापता है।

समाचार सुन कर सतीश चन्द्र, धर्मचन्द्र और उनकी पत्नियाँ भी आईं। घनश्याम की पत्नी तो प्रातः काल से ही लक्ष्मी के पास बैठी हुई उसे धैर्य दे रही थी। सतीश ने लक्ष्मी को धैर्य बँधाते हुए पूछा—

"चाची, कहीं चाचा जी हरिपुर से बाहर तो नहीं गए?"

लक्ष्मी ने रोते हुए कहा—

"नहीं भैया! वह बिना बताए हरिपुर से बाहर कभी नहीं जाते। फिर जाते भी तो क्या बिना असबाब और कपड़े-लत्ते लिए ही चले जाते।"

धर्मचन्द्र ने सन्देह प्रकट करते हुए कहा—

"मुझे तो सब इस चौधरी की दुष्टता लगती है, चाची! यह ऊपर से भला बना रहता है, किन्तु भीतर से बड़ा बदमाश है। नित्य इसके घर जाटों की बैठक होती थी। मैं सब-कुछ जानता हूँ। ये सब हमारे विरुद्ध षड्यन्त्र रचते रहते थे। मेरा विचार है कि वह रुपए देने के बहाने चाचा जी का अनिष्ट करने की इच्छा से उन्हें लिवाने आया था। तुम्हें चाहिए था चाची, कि चाचा जी को अकेले इस राक्षस के घर न जाने देतीं। और कोई नहीं तो कम से कम एक नौकर ही साथ होता तो भी कुछ बन सकता था, किन्तु अब किससे जा कर पूछें?"

यह कहते-कहते धर्मचन्द्र के नेत्र सजल हो गए। लक्ष्मी और भी फूट-फूट कर रोने लगी। सतीश चन्द्र आयु में धर्मचन्द्र से कुछ बड़ा था।

अतः अधिकारपूर्वक उसे फटकारता हुआ बोला—

"क्या नादान बन रहे हो, धर्म ! तुम चाची को धैर्य बँधाने आए हो या रुलाने ? जब तक ठीक तरह पता न लगे तब तक क्यों व्यर्थ की शँकाएँ कर रहे हो। चाची तुम घबराओ मत। मैं अभी जा कर पुलिस में रिपोर्ट करके आता हूँ। चौधरी के घर का एक-एक कोना खोज डाला जाएगा। फिर उसकी क्या मजाल कि मेरे चाचा जी को कहीं छिपा कर अथवा कैद कर के रख सके।"

घनश्याम की पत्नी ने रोते हुए कहा—

"कैद की बात तो देखी जाएगी भैय्या, किन्तु.........।"

सतीश चन्द्र ने संकेत से छोटी चाची को बीच में ही रोक कर चुप कर दिया और फिर धर्मचन्द्र की ओर उन्मुख हो कर बोला—

"चलो धर्म, अभी थाने में चल कर पूरी रिपोर्ट लिखा आएँ। घनश्याम चाचा जी कल आ कर सब देख लेंगे। तब तक हम भी अपनी ओर से पूरा प्रयत्न कर लें।"

धर्मचन्द्र भाई के पीछे चलने लगा। घनश्याम की पत्नी नें दोनों को रोकते हुए कहा—

"सतीश भैया, पहले उन्हें तार दे दो। नहीं तो पता नहीं कि वह कल आएँ, परसों आएँ या उससे भी अगले दिन आएँ। यहाँ तो एक-एक दिन भारी है। इतने दिन तक न आए तो क्या होगा ?"

सतीश ने कुछ आश्चर्य-चकित हो कर कहा—

"क्यों इतने दिन कैसे लगा देंगे ? दुकान का सामान ही तो खरीदने गए हैं। पहले भी तो वह सदा दूसरे या तीसरे दिन लौट कर आ जाते थे।"

लक्ष्मी ने आग्रहपूर्वक कहा—

"नहीं भैया, यह ठीक कहती हैं। तुम तार दे आओ। इस

बार उन्हें शाहदरे भी जाना है। फिर सामान आदि खरीदेंगे तो दो-तीन दिन लग जाएँगे। शाहदरे का पता मुझसे ले लो। दिल्ली में तुम्हें पता ही है कि वह कौन-सी धर्मशाला में ठहरते हैं। दोनों जगह तार दे दो। उनके आने से मन को सन्तोष हो जाएगा।"

सतीश 'बहुत अच्छा, चाची जी,' कह कर धर्मचन्द्र को साथ ले कर चला गया। तार देने के उपरान्त दोनों ने पुलिस में जा कर रिपोट लिखवा दी। थानेदार परिचित था। विद्या के विवाह में श्यामलाल ने अपने घर बुला कर उसकी खूब आव-भगत की थी और बाद में बहुत-सी मिठाई भी उसके घर भेजी थी। उसी अवसर पर उसने यह भी जान लिया था कि सतीश चन्द्र और धर्मचन्द्र श्यामलाल और घनश्याम के भतीजे हैं—उनके दो मृतक भाइयों की निशानियाँ। थाने में पहुँचते ही उसने दोनों को पहचान लिया और स्नेह से कुर्सियों पर बैठाया। जिस बात की रिपोर्ट लिखाने वे दोनों आए थे वह उसे पहले ही सुन चुका था। उसने आश्वासन दिया कि वह श्यामलाल को खोजने में अपनी ओर से कुछ भी न उठा रखेगा। घर आ कर जब सतीश और धर्मचन्द्र ने लक्ष्मी को थानेदार की बात बतलाई तो उसे कुछ सान्त्वना मिली।

जिस समय घनश्याम को तार मिला उस समय वह दिल्ली में था। श्यामलाल ने राधा के लिए जो लड़का चुना था वह निश्चय ही सुन्दर और हँसमुख था। घनश्याम उससे मिल कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ था और उसने मन ही मन भाई के चुनाव की प्रशंसा भी की थी। वह अधिक से अधिक शीघ्रतापूर्वक दिल्ली पहुँच कर दुकान का सामान खरीद लेना चाहता था जिससे शीघ्र हरिपुर पहुँच कर भाभी को यह शुभ समाचार सुना सके। जब उसे तार मिला तब तक वह आधे से अधिक सामान खरीद चुका था और अगले दिन सुबह की गाड़ी से हरिपुर के लिए रवाना हो जाने का उसका विचार था। शीघ्र लौट आने का तार पा कर उसके लिए ठहरना असम्भव था। तार में लिखा हुआ था कि इसी क्षण चले आओ। घनश्याम के लिए यह एक अभूतपूर्व

बात थी। अब तक कितनी ही बार वह सामान खरीदने देहली आ चुका था, किन्तु घर से ऐसा तार उसके लिए आज तक कभी नहीं आया था। कई बार देहली से सहारनपुर लौटने पर उसे ज्ञात होता था कि उसकी ज़मींदारी का अत्यन्त आवश्यक कार्य उसके बिना रुका हुआ था, फिर भी श्यामलाल भैया ने सब स्वयं सम्हाल लिया था। उसे तार दे कर शीघ्र आने के लिए नहीं कहा था। फिर इस बार अवश्य कोई अनहोनी बात हुई होगी। किसी अज्ञात अनिष्ट की आशंका से उसका हृदय काँप गया। उसने शीघ्रतापूर्वक अपने खरीदे हुए सामान को बाँधा और सायँकाल की गाड़ी से ही हरिपुर के लिए रवाना हो गया।

घर पहुँच कर जो कुछ उसने सुना उसकी उसे स्वप्न में भी आशंका न थी। वह सोच रहा था कि ज़मींदारी के विषय में कोई अत्यन्त कठिन समस्या आ पड़ी होगी। इसीलिए भैया के कहने से सतीश ने मुझे तार दे दिया है। सो कोई बड़ी बात नहीं है, मैं और भैया मिल कर सब ठीक कर लेंगे। इसका उसे गुमान भी न था कि उसके भैया ही उससे छिन चुके हैं। उसके सिर पर जैसे वज्राघात हुआ। उमड़ते हुए अश्रुओं को बरबस रोक कर बोला—

"अब क्या होगा भाभी?"

रोते-रोते लक्ष्मी की आँखें सूज गई थीं। शायद हृदय का सारा जल समाप्त हो चुका था। इसी कारण उसका रुदन अब बन्द हो चुका था, किन्तु हृदय अब भी हाहाकार कर रहा था। घनश्याम की बात सुन कर उसके नेत्रों से अश्रु-धारा पुनः प्रवाहित होने लगी। रो कर बोली—

"होना क्या है भैया, मेरा भाग्य ही खोटा है। उन्हें यहाँ से गए दो दिन हो चुके हैं। मेरा मन कहता है कि अब वह जीवित नहीं हैं। बस अब तुम किसी प्रकार उनकी लाश खोज कर ला दो तो मैं उनका दाह-कर्म कर विष खा कर शान्ति से सो सकूँ। ये बच्चियाँ अब तुम्हारे

भरोसे हैं जैसे चाहे रखना, जहाँ मर्जी विवाह करना। समझ लेना कि ईश्वर ने तुम्हें दो नहीं, अपितु पाँच पुत्रियाँ दी हैं। हाँ, एक आशा पूरी नहीं हुई। हमारी वंश-बेलि को चलाने वाला ईश्वर ने नहीं दिया। हम दोनों की आत्मा अब नर्क में भटकती फिरेगी।

घनश्याम ने अत्यन्त कातर हो कर कहा—

"भाभी, तुम एक आशँका को सत्य बतला कर मुझे क्यों दुखित करती हो? मेरा मन कहता है कि मेरे भैया अवश्य जीवित हैं। अपने घनश्याम को इस प्रकार असहाय छोड़ कर वह नहीं जा सकते। भाभी, वह कभी भी नहीं जा सकते। मैं उन्हें बाल्यकाल से ही पहचानता हूँ। जितना स्नेह उन्हें मुझ से रहा है उतना अपनी विद्या और राधा से भी नहीं। फिर मैं कैसे मान लूँ कि वह बिना मुझ से कुछ कहे इस प्रकार चुपचाप चले गए। उनका बाल कौन बाँका कर सकता है? तुम उनकी शक्ति को नहीं पहचानतीं, भाभी। नहीं तो ऐसा विश्वास कभी न करतीं। मैं अभी थानेदार के पास जा कर रिपोर्ट लिखवा देता हूँ और उसे कुछ रुपए दे कर भैया को खोजने के लिए नियुक्त करता हूँ। मैं भी तब तक खोजूँगा। देखूँ फिर वह कैसे नहीं मिलेंगे।"

यह कहते-कहते घनश्याम के शब्दों में दृढ़ता और विश्वास के संकेत चमक उठे। इतने दुख के समय में भी देवर की दृढ़ विश्वास से पूर्ण बातों को सुन कर लक्ष्मी का मन प्रसन्नता से भर गया। उसके अश्रुओं का प्रवाह स्वयं ही रुक गया और वह शान्त-भाव से बोली—

"ईश्वर करे मेरा विश्वास मिथ्या हो और तुम्हारा विश्वास सत्य हो, किन्तु थाने में जाना व्यर्थ है। रिपोर्ट तो सतीश पहले ही लिखा चुका है। अभी तक तो कुछ हुआ नहीं, आगे जो होगा सो देखा जाएगा।"

घनश्याम ने उठते हुए कहा—

"यदि रिपोर्ट लिखा दी गई तो ठीक है। मैं जा कर थानेदार से

पूछता हूँ कि कुछ पता लगा अथवा नहीं ? यदि कुछ नहीं हुआ होगा तो मैं खुफिया पुलिस को इस काम में लगा दूँगा। रुपए चाहे कितने ही खर्च हों, मुझे चिन्ता नहीं है। जो कुछ मेरे पास है सब भैया का ही तो है।"

घनश्याम ने अभी घर से बाहर कदम रखा ही था कि उसे सामने से एक सिपाही उसी ओर आता हुआ दिखलाई पड़ा। उसने आते ही घनश्याम को आदर से सलाम किया और घनश्याम को उत्सुक दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए पा कर तुरन्त कहा—

"आपको थानेदार साहब ने याद किया है।"

घनश्याम ने अत्यन्त उत्सुक हो कर कहा—

"क्यों कुछ पता लग गया क्या ?"

सिपाही ने नम्रतापूर्वक कहा—

"हजूर-पता लग तो चुका है, किन्तु मुझे कुछ भी बतलाने का हुक्म नहीं है। कृपा कर आप चलें और थाने से ही सब कुछ पता जान लें।"

यह कह कर सिपाही लौट चला। घनश्याम भी अपने हृदय की धड़कन को किसी प्रकार दबाए उसके पीछे-पीछे शीघ्रतापूर्वक थाने जा पहुँचा। थानेदार उसी की प्रतीक्षा में बाहर टहल रहा था। उसके मुख पर दुख तथा चिन्ता की गहरी रेखाएँ स्पष्ट थीं। घनश्याम को देख कर वह टहलना छोड़ कर सिर को कुछ नीचे की ओर झुका कर खड़ा हो गया और बोला—

"तुम देहली से लौट आए लाला जी ? मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा में था।"

घनश्याम ने शीघ्रतापूर्वक उत्तर देते हुए कहा—

"हाँ थानेदार साहब, केवल दो घण्टे ही मुझे आए हुए हुए हैं। भाई साहब का कुछ पता लगा ?"

थानेदार ने अपने झुके हुए सिर को कुछ और भी झुका कर कहा—

"पता तो लग गया है, घनश्याम जी, किन्तु·······।"

घनश्याम ने बात काट कर कहा—

"लग गया है ? सच ! क्या भैया का पता लग गया ? बतलाओ वह कहाँ हैं ? जल्दी बतलाओ थानेदार साहब ! मैं तुम्हारा यह उपकार कभी नहीं भूलूँगा।"

थानेदार ने अपने नेत्रों पर रुमाल रखते हुए कहा—

"पहले मन को पत्थर का बना लो, घनश्याम ! फिर बतलाऊँगा।"

घनश्याम पर जैसे वज्राघात-सा हुआ। भय और दुख से पूर्ण वचनों से बोला—

"यह क्या कह रहे हो, थानेदार साहब ? मेरे भैया जीवित तो हैं न ?"

थानेदार अब तक सम्हल गया था। उसने रुमाल की तह कर जेब में रख लिया और शान्त शब्दों में उत्तर देते हुए बोला—

"मुझे दुख है कि वह मर चुके हैं। उन्हें किसी ने कत्ल करके बोरी में डाल कर जँगल के कुएँ में फेंक दिया था। कल हमारे एक सिपाही ने हमें इस बात की सूचना दी थी कि उसने उस कुएँ में एक बोरे को देखा है। आज················।"

थानेदार के कुछ और कहने से पहले ही घनश्याम मूर्छित हो कर गिर पड़ा। थानेदार ने सिपाहियों की सहायता से उसे उठा कर अन्दर कमरे में ले जा कर एक चारपाई बिछा कर लिटाया और जल छिड़क कर उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगा। कुछ देर बाद घनश्याम ने आँखें खोलीं और उसके नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बहने लगी। रो कर बोला—

यह आपने क्या कह दिया, थानेदार साहब ? क्या अब मेरे प्यारे भैया इस संसार में नहीं हैं ? हाय राम ! अब कौन प्यार से घनश्याम कह कर पुकारेगा ? किसके भरोसे मैं अब निश्चिन्त बैठ सकूँगा ? हाय ! अब मैं भाभी को क्या उत्तर दूँगा ! थानेदार साहब, मैं तो उन्हें विश्वास दिला कर आया था कि भैया जीवित हैं। अब मैं कौन-सा मुँह ले कर उनके पास जाऊँ ?"

थानेदार ने धैर्य बँधाते हुए कहा—

"जो होना था सो हो चुका भैया ! अब मन को कड़ा करो। यदि तुम पुरुष हो कर इतने निराश हो रहे हो तो ज़रा सोचो कि तुम्हारी भाभी और उनके बच्चों का क्या हाल होगा ? इस समय तुम्हारा कर्तव्य यही है कि स्वयं भी शान्त रहो और दूसरों को भी शान्ति का उपदेश दो। एक सिपाही के हाथ लाश को घर ले जा कर उसका विधिवत् दाह-संस्कार करो जिससे कि मृत-आत्मा को शान्ति मिले।"

श्यामूलाल की मृत्यु की बात सुन कर घनश्याम के हृदय पर ऐसा आघात लगा कि उसे लाश देखने तक की सुध न रही थी। थानेदार के इन बचनों को सुन कर उसे आया तो उसने लाश देखने की इच्छा प्रकट की। थानेदार के संकेत पर एक सिपाही भीतर गया और एक बोरी ले कर आया। बोरी में यत्र-तत्र रक्त के बड़े धब्बे पड़े हुये थे। श्यामलाल की लाश के दो टुकड़ों को देख कर घनश्याम एक बार पुनः मूर्च्छित हो गया। कुछ देर तक उपचार करने के बाद जब उसे होश आया तो वह तुरन्त उठ बैठा। इस बार उसके नेत्रों में दुःख की अपेक्षा क्रोध की मात्रा अधिक थी। थानेदार उसके इस रूप को देख कर कुछ सहम कर पीछे हट गया। उसने सोचा कि शायद यह भाई के वियोग में पागल हो गया है। उसी समय घनश्यान ने क्रोध से जलते हुए नेत्रों को थानेदार के नेत्रों में गढ़ा कर कहा—

"थानेदार साहब, जिस दुष्ट ने मेरे भाई की यह दशा की है वह

भी इस संसार में अधिक दिन जीवित नहीं रह सकेगा । यह लो सौ रुपए का नोट । जितने रुपये चाहे खर्च हो जाएँ । मुझे इसकी चिन्ता नहीं है । आप खुफिया पुलिस के दो व्यक्तियों को तैनात कर दें । शीघ्र से शीघ्र मेरे भाई के हत्यारे को खोज कर फाँसी दे दी जाए । तभी मेरे भ्रातृ-वियोग से जलते हुए हृदय को कुछ शान्ति मिलेगी ।"

थानेदार ने नोट को अपनी जेब में रखते हुए कहा--

"तुम चिन्ता मत करो घनश्याम जी ! छोटे लाला जी जैसे तुम्हारे भाई थे वैसे मेरे भी थे । सदा मेरा आदर-सत्कार करते थे । मैं अपनी ओर से हत्यारे को खोजने में कुछ भी न उठा रखूँगा ।"

जब घनश्याम एक सिपाही के साथ श्यामलाल की लाश को ले कर घर पहुँचा तब लगभग रात हो चुकी थी । लाश को देखते ही कोहराम मच गया । जब से श्यामलाल लापता हुआ था तब से लक्ष्मी चार बार मूर्च्छित हो चुकी थी । लाश को देखते ही वह कटे वृक्ष की भाँति उस पर गिर पड़ी । एक घण्टे तक उपचार करने के उपरान्त बड़ी कठिनता से उसे होश आया । राधा, सीता और अहिल्या बिलख-बिलख कर रो रही थीं । घनश्याम उन्हें समझा-समझा कर चुप कर रहा था । अहिल्या तो किसी प्रकार बहलाने से चुप हो गई, किन्तु राधा और सीता किसी प्रकार चुप नहीं हुईं । घनश्याम भतीजियों को तो अपने आँसू रोक कर किसी प्राकार सान्त्वना दे रहा था, किन्तु भाभी को धैर्य बँधाने का साहस उसमें नहीं था ।

लक्ष्मी होश में आते ही अफीम खाने के लिए तैयार हो गई । लाला जी जब जीवित थे तब कभी-कभी थोड़ी अफीम खाते थे । इसी कारण श्यामलाल के घर पहले की बची हुई अफीम एक डिबिया में रखी हुई थी । लक्ष्मी को आत्म-हत्या करने पर उतारू देख कर घनश्याम की पत्नी सतीश चन्द्र की माँ और धर्मचन्द्र की माँ ने उसे काफी ऊँच-

नीच समझाया; किन्तु वह किसी प्रकार मानती ही न थी। सतीश चन्द्र की माँ ने कहा—

"देख बहू, तेरी तो छोटी-छोटी लड़कियाँ हैं। उनका भार संभालना है। जब हमारे पति मरे थे तो हमारे लड़के सम्हल चुके थे। उनका विवाह हो चुका था, फिर भी हम जीवित रहीं। मरने वाले के साथ कोई कहाँ तक मर सकता है?"

लक्ष्मी जेठानियों की पकड़ से बरबस अपने को छुड़ाती हुई बोली—

"मुझे मत रोको, जीजी। तुम्हारी बात और थी। तुम्हारे पति मर गए, किन्तु वंश को बढ़ाने वाले पुत्र तो थे। तुम्हारे हृदय में इसी का प्रकाश था, इसी कारण तुम जी सकीं किन्तु मैं किस आशा में जीवित रहूँ? लड़कियाँ हैं सो कोई बात नहीं तुम सब लोग सम्हाल लेना। मैं जीवित रह कर क्या करूँगी?"

धर्मचन्द्र की माँ ने एक रहस्य को खोल कर समझाते हुए कहा—

"मरने की धुन में तो है, पगली! पर यह तो ज़रा सोच कि अपने साथ एक और जीव की हत्या का पाप भी अपने सिर ले रही है। क्या पता आने वाला जीव लड़का ही हो। फिर तो तू भी अपने हृदय में प्रकाश पाएगी। कम से कम उतनी देर प्रतीक्षा कर ले, फिर जो मन में आए सो कर लियो।"

लक्ष्मी को पाँच महीने का गर्भ था। उसने अभी तक इस विषय में नहीं सोचा था। जिठानी की बात सुन कर वह सोच में पड़ गई। इतने में घनश्याम की पत्नी ने घनश्याम को सूचना दे दी थी कि जीजी अफीम खा कर मरना चाहती हैं। यह सुनते ही घनश्याम वहाँ तेज़ी से आया और लक्ष्मी के सामने भूमि पर गिर कर बोला—

"भाभी, अगर तुमने यही ठान ली है तो मेरी हत्या का पाप भी तुम्हारे सिर होगा। ज्यों ही तुम ज़हर खाओगी त्यों ही मैं छत से नीचे

कूद कर प्राण दे दूँगा। भैया तो छोड़ गए। अब क्या तुम भी मुझे जीने न दोगी?"

लक्ष्मी अब तक निश्चय कर चुकी थी कि वह होने वाले शिशु की प्रतीक्षा में अवश्य जीएगी। अतः बोली—

"नहीं देवर जी, ऐसी बुरी बातें न कहो। पहले ही हमारी वंश-वल्लरी कृश हो चुकी है। अब उसे इस प्रकार पुरुषों से शून्य न करो। मैंने अपना विचार बदल दिया है। पहले मैं सोचती थी कि एकबारगी ही इस शरीर को त्याग दूँ, किन्तु अब मैंने घुल-घुल कर मरने की सोच ली है। अब तुम उठ कर अपने भाई के दाह संस्कार का प्रबन्ध करो।"

घनश्याम ने उठ कर लक्ष्मी की चरण रज अपने मस्तक पर लगाते हुए कहा—

"तुम देवी हो, भाभी! तुमने मेरी प्रार्थना मान कर मुझे जिला लिया। मैं तुम्हें घुल-घुल कर नहीं मरने दूँगा, भाभी! मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञा मानूँगा। भैया की सारी ज़मींदारी सम्हालूँगा...और... और...भैया के हत्यारे को फाँसी के तख्ते पर चढ़वा कर रहूँगा। तब तुम्हें अवश्य शान्ति मिलेगी।"

लक्ष्मी के नेत्रों में कृतज्ञता के अश्रु भर आऐ। उसने घनश्याम को सफल होने के लिये आशीर्वाद दिया। लाश का दाह-संस्कार करने के उपरान्त जब अन्य व्यक्तियों के साथ घनश्याम घर लौटा तो उसे अपना हृदय सर्वथा शून्य प्रतीत हो रहा था। उसने अनुभव किया कि वह श्यामलाल से शून्य पृथ्वी पर अधिक दिन जीवित नहीं रह सकेगा।

दस

श्यामलाल की हत्या हुए चार मास व्यतीत हो गए। इस बीच में पुलिस ने काफी छान-बीन की, किन्तु हत्यारे का पता नहीं लग सका। सब सन्देहजनक जाटों के घरों की तालाशी ली गई। उनमें चौधरी और हरिराम के घर भी थे, किन्तु कहीं कोई आपत्तिजनक वस्तु प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि यह स्पष्ट हो चुका था कि श्यामलाल की हत्या गँडासे से हुई थी, किन्तु इससे कोई समस्या हल नहीं हो सकती थी, क्योंकि गँडासे प्रायः सभी कृषक जाटों के घर थे। अतः जिस गँडासे से हत्या की गई थी उसे खोजना असम्भव था।

घनश्याम का स्वास्थ्य प्रति दिन खराब होता जा रहा था। एक तो भ्रातृ-वियोग का दुःख ही सबसे अधिक था, फिर दूसरी ओर हत्यारे को खोजने की चिन्ता। और उसमें सफलता न मिलने की निराशा भी कुछ कम नहीं थी। जब भी वह थानेदार से हत्यारे के विषय में पूछता था तब ही उसे निराशाजनक उत्तर मिलता था। अब तक वह थानेदार को दो हज़ार रुपए दे चुका था।

उन्हीं दिनों हरिपुर में यह समाचार विद्युत की भाँति फैल गया कि हरिराम को सहसा लकवा मार गया है। उसके हाथ-पैर सर्वथा बेकार हो गए हैं और वह चारपाई से हिल भी नहीं सकता है। इसके चार दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के तीसरे दिन घनश्याम खा-पी कर चारपाई पर विश्राम कर रहा था कि इतने में किसी ने आँगन

का दरवाज़ा खटखटाया। नौकर के दरवाजा खोलने पर घनश्याम ने देखा तो सामने धनीराम खड़ा था। घनश्याम ने समझा कि धनीराम लगान ले कर आया है। अतः उसने कहा—

"लगान देने आए हो, धनीराम? पर आज तो पटवारी जी किसी काम से कहीं बाहर गए हुए हैं। कल दे जाना।"

धनीराम ने भीतर आते हुए कहा—

"नहीं लाला जी, लगान तो अभी मैं एक हफ्ता ठहर कर दे सकूँगा। इस समय तो मैं एक विशेष बात बतलाने आया हूँ।"

घनश्याम ने उठ कर बैठते हुए तनिक आश्चर्य से कहा—

"विशेष बात! कौन सी बात है? बतलाओ।"

धनीराम ने समीप खड़े हुए नौकर की ओर एक दृष्टि डाल कर पुनः घनश्याम की ओर देख कर कहा—

"वास्तव में लाला जी, वह बात अकेले में बतलाने की है।"

घनश्याम ने नौकर को जाने का संकेत किया और फिर धनीराम की ओर उत्सुक दृष्टि से देखते हुए कहा— "हाँ, बतलाओ।"

धनीराम ने कुछ सोचते हुए कहा—

"आपके भाई की हत्या हुए कितने महीने बीत गए?"

घनश्याम का चेहरा एक दम उदास हो गया। ठँडी साँस ले कर— जैसे अपने आप से ही बोला—

"आज चार महीने हो चुके, किन्तु मैं अभी तक उनके हत्यारे को दण्ड न दिला सका। भैया की आत्मा परलोक में कितनी अशान्त होगी।"

धनीराम ने सान्त्वना के स्वर में कहा—

"हत्यारे को दण्ड मिल चुका है, लाला जी !"

घनश्याम ने एक दम चौंक कर कहा—

"सच कहते हो ! सज़ा मिल चुकी ? किन्तु मुझे तो थानेदार ने कोई सूचना नहीं दी है । क्या तुम जानते हो कि हत्यारा कौन है ?"

धनीराम ने रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा—

"क्यों नहीं जानता ? अपने आत्मीओं को सभी पहचानते हैं, लाला जी, किन्तु केवल उनका बाह्य रूप ! अन्तर का हाल तो केवल ईश्वर ही पहचानता है । मेरे बड़े भाई हरिराम ने आपके बड़े भाई की हत्या कर आपको और उनके बाल-बच्चों की आत्मा को जो महान् कष्ट पहुँचाया था उसका दण्ड ईश्वर ने उसे परसों दे दिया ।"

घनश्याम ने आश्चर्यचकित हो कर कहा—

"क्या कहते हो ? हरिराम ने हत्या की थी ? किन्तु सुनते हैं कि वह तो उन दिनों बहुत बीमार था ।"

"अपने उद्देश्य को सरलता से पूर्ण करने के लिए ही उसने और मँगू चौधरी ने यह झूठी खबर फैलाई थी जिससे बाद में किसी को उन पर सन्देह न हो ।"

घनश्याम ने दोनों हाथों में सिर थाम कर कहा—

"ओह, तुमने मुझे पहले क्यों न बतलाया धनीराम ? शायद तुम्हें भय था कि तुम्हारे भाई को फाँसी दे दी जाएगी, किन्तु सत्य की रक्षा के लिए तुम्हें भाई का त्याग कर देना चाहिए था । तुम तो सदा ईमानदार रहे हो । जब सब जाटों ने लगान देना बन्द कर दिया था तब भी तुम लगान देते रहे थे । फिर इस बार ईमानदारी और सचाई का साथ तुमने किस लिए छोड़ दिया ?"

धनीराम ने दुखित स्वर से अपनी सफाई देते हुए कहा—

"मुझे दुःख है मालिक, किन्तु सत्य तो यह है कि पहले मुझे इसका निश्चित ज्ञान नहीं था। केवल सन्देह के आधार पर अपने भाई को दण्ड दिलाना मुझे उचित प्रतीत नहीं हुआ। एक दिन उसने मुझे आप में और बड़े लाला जी में फूट डालने की आज्ञा दी थी। मैंने अस्वीकार किया तो उसने इस ओर संकेत किया था कि यदि मैंने उसकी बात नहीं मानी तो बड़े लाला जी की हत्या कर देगा। इतने पर भी मैंने उसकी आज्ञा नहीं मानी। इसलिए मुझे कुछ सन्देह हुआ कि सम्भव है बड़े लाला जी की हत्या उसी ने की है। उस दिन वह घर नहीं था, इतना तो मैंने स्वयं जा कर देख लिया था। वस्तुतः वह हत्या करने के उद्देश्य से चौधरी के घर में छिपा हुआ था। मैं चौधरी के घर भी गया था, किन्तु चौधरी ने कहा कि हरिराम उसके घर नहीं आया। मुझे उसके उड़े हुए रँग को देख कर कुछ सन्देह तो हुआ, किन्तु उसी समय सामने से बड़े लाला जी को जाते हुए देख कर मैं चला आया। इन्हीं दो सन्देहजनक बातों के आधार पर मैंने अपने भाई के हत्यारे होने का अनुमान लगाया था, किन्तु ठोस प्रमाणों के अभाव से मैं इस बात को आप तक कैसे पहुँचा सकता था? अब आप ही बतलाइए कि इसमें मेरा क्या अपराध है?"

घनश्याम ने फीकी हँसी हँस कर कहा—

"फिर अब तुम निश्चयपूर्वक कैसे कह सकते हो कि हत्या हरिराम ने की थी?"

धनीराम ने विश्वास दिलाते हुए कहा—

"अब जो मैं कह रहा सो बिलकुल सत्य कह रहा हूँ। परसों मरने से एक घण्टा पूर्व हरिराम भैया ने मुझे बुलवा कर मेरे सम्मुख सब कुछ सच-सच कह दिया था। उसने कहा कि मंगू चौधरी के बहकाने से ही वह इस नीच कार्य में प्रवृत्त हुआ था। चौधरी ने जाति-सेवा के बहाने उसे इस कार्य को करने के लिये राजी कर लिया था। उस समय तो

उसने चौधरी का कहना मान कर बड़े लाला जी की हत्या कर दी, किन्तु शरीर में सहसा लकवे की बीमारी हो जाने पर उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने कहा था कि परमात्मा ने उसे पाप का दण्ड दिया है। मरते समय एक प्रार्थना उसने मुझ से की थी। वह यह कि मैं आपके सम्मुख सब बातें सच-सच कह दूँ। अब आप और लक्ष्मी भाभी उसका यह गुरु-अपराध क्षमा करें जिससे उसकी आत्मा को शान्ति मिले।"

घनश्याम ने क्रोध से कहा—

"उस दुष्ट और नीच हत्यारे को मैं क्षमा कर दूं! कभी नहीं। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। यदि वह जीवित होता तो उसे फाँसी के तख्ते पर झूलते देख कर मेरी आत्मा को शान्ति मिलती। आज जब कि वह मर चुका है तो उसकी आत्मा को नर्क के अग्नि-कुण्ड में दग्ध होते देख कर मुझे सन्तोष होगा। तुम कहते हो कि मैं उसे क्षमा कर दूँ जिससे उसकी आत्मा को शान्ति मिल सके! किन्तु मैं चाहता ही कब हूँ कि उसकी दुष्ट आत्मा को शान्ति मिले। ईश्वर करे कि वह युग-युग तक घोर नर्क में वास करे।"

धनीराम ने प्रार्थना भरे स्वर में कहा—

"मरे हुए से शत्रुता करने से क्या लाभ? सच कहता हूँ कि मरते समय वह घोर पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा था। मैंने उसे वचन दिया था कि मैं आप से और भाभी जी से उसके लिए क्षमा माँग लूँगा। कृपा करके आप उसके लिए न सही मेरे लिए उसे क्षमा कर दीजिए।"

घनश्याम का हृदय कुछ पिंघल गया। उसने कहा—"देखो धनीराम, तुम परे मुझे तनिक भी रोष नहीं है। तुम जानते ही हो कि मैं तुम्हें बहुत मानता हूँ, किन्तु तुम्हारे लिए मैं उस दुष्ट को कभी क्षमा नहीं कर सकता। जब से भैया गए हैं तब से दुःख और चिन्ताओं के कारण मेरा शरीर आधा रह गया है। मुझे नित्य अनुभव होता रहता है

कि मैं शनैः-शनैः मृत्यु के समीप आता जा रहा हूँ। तुम देख लेना मैं अधिक से अधिक पाँच-छः वर्ष और जीवित रह सकूँगा। पूज्य पिता जी और दो बड़े भाइयों की मृत्यु का दुःख मुझे कभी अधिक नहीं हुआ। होता भी कैसे? स्नेहशील श्यामलाल भैया ने कभी होने ही नहीं दिया। किन्तु उनके अभाव की पूर्ति करने वाला कोई नहीं है, धनीराम! लक्ष्मी भाभी की इस अल्पायु में यह दुर्दशा देख कर हृदय फटा जाता है। इस पर भी तुम चाहते हो कि मैं भाई के हत्यारे को हृदय से क्षमा कर दूं। इतना उदार मेरा हृदय नहीं है, धनीराम! लक्ष्मी भाभी का हो तो हो। तुमने वचन दिया है तो भाभी से ही जा कर उसके लिए क्षमा माँगो। वह बड़ी दयावान हैं। सारी बातें सुन कर उस पापी को अवश्य क्षमा कर देंगी, किन्तु मुझ से ऐसी आशा कभी न रखना।"

धनीराम उठते हुए बोला—

"जो आपकी आज्ञा लाला जी! भाभी के पास जा कर ही प्रार्थना करूँगा। वह मेरी माता के समान हैं। सम्भव है मेरी प्रार्थना मान लें।"

घनश्याम ने धनीराम को जाते हुए देखा तो उसे सहसा एक बात स्मरण हो आई। उसने उसे आवाज़ दे कर कहा—

"ठहरो धनीराम, एक बात तो बतलाते जाओ।"

धनीराम लौट कर उसी स्थान पर खड़ा हो गया जहाँ पर वह कुछ देर पूर्व बैठा हुआ था। घनश्याम ने पूछा—

"तुमने बतलाया था न कि भैया की हत्या के मामले में हरिराम और मँगू चौधरी ने मिल कर षड्यन्त्र किया था। मुख्य हत्यारा तो मृत्यु की गोद में पहुँच गया, किन्तु गौण तो अभी शेष है। मैं उसे अवश्य दण्ड दिलवाऊँगा। तुम अदालत में गवाही दोगे न?"

धनीराम ने स्वीकृतिसूचक रीति से सिर हिलाते हुए कहा—

"अवश्य दूँगा। आप उसे गौण हत्यारा कहते हैं ? मैं कहता हूँ कि मुख्य वही है। उसी की प्रेरणा से हरिराम भैया की इतनी हिम्मत पड़ी। आज तक आप लोगों के विरुद्ध जो षड्यन्त्र और जो लड़ाई-झगड़े जाटों ने किए हैं उन सब के मूल वही काला नाग है। वह व्यर्थ में सबको जाति-सेवा के नाम पर उकसाता है। फिर बात बिगड़ती देख कर वह स्वयं भला बन जाता है जिससे आप लोगों को उस पर तनिक भी सन्देह न हो। इस प्रकार वह दूसरों को फँसा देता है। उसे दण्ड मिल गया तो फिर कोई भी जाट किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करेगा, यह देख लेना।"

घनश्याम बिना उत्तर दिए चुपचाप कुछ सोचता रहा। कुछ देर बाद धनीराम ने कहा—

"अच्छा फिर लाला जी, मैं चलता हूँ। जय राम जी की।"

घनश्याम ने जब अभिवादन का उत्तर दे दिया, तब धनीराम चला गया। घर न जा कर वह सीधा श्यामलाल के घर गया। लक्ष्मी को आदि से अन्त तक सब बातें बतला कर उसने हरिराम के लिए क्षमा माँगी। लक्ष्मी का हृदय अत्यन्य उदार था। जब उसने सुना कि हरिराम ने अपनी इच्छा से नहीं, अपितु चौधरी के बहकाने से हत्या की थी और मृत्यु-शैया पर उसे इसका अत्यधिक पश्चात्ताप था, तब उसका हृदय एक दम पिघल गया। बोली—

"जब ईश्वर ने स्वयं ही उसे दण्ड दे दिया फिर हम व्यर्थ उस पर रोष क्यों रखें ? जाओ धनीराम, मैंने तुम्हारे भाई को क्षमा कर दिया। जब उसने अपनी इच्छा से मेरा अनिष्ट नहीं किया तब मेरे मन में भी उसके प्रति कोई गिला नहीं है। दण्ड तो वास्तविक अपराधी चौधरी को ही मिलना चाहिए जिसने इस कार्य के लिए प्रेरणा दी थी।"

धनीराम ने प्रसन्न मन से कहा—

"बेशक भाभी ! मैं स्वयं उसके विरुद्ध अदालत में गवाही दूँगा।"

लक्ष्मी ने धनीराम के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की। वह प्रसन्न हृदय से अपने घर चला गया। चलते समय उसे अनुभव हो रहा था कि उसके हृदय से एक भारी बोझ उतर गया है। उसने मरते हुए व्यक्ति को जो वचन दिया था वह पूरा कर दिया था। इस विचार से उसका हृदय सन्तुष्ट था।

× × ×

मँगू चौधरी ने जब देखा कि पुलिस उसके और हरिराम के भेद को न जान सकी तब उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसने मन में कहा कि चलो अच्छा हुआ, साँप भी मर गया और लाठी भी न टूटी। श्यामलाल, जिससे मुझे सबसे अधिक ईर्ष्या थी, सहज ही मृत्यु के घाट उतार दिया गया और हमें कोई दण्ड भी नहीं मिला। जब पुलिस सन्देह के कारण उसके घर की तालाशी लेने आई थी तब उसका हृदय धड़क रहा था, किन्तु बाहर से वह भरसक अपने को निश्चिन्त दिखलाने को चेष्टा करता रहा। अन्त में जब थानेदार को कोई भी सन्देहजनक वस्तु नहीं मिली और पुलिस लौट गई तब उसका मन प्रसन्नता से खिल उठा। उसने मन में कहा—"खूब मूर्ख बनाया सालों को। अब इनका बाप भी मुझे नहीं पकड़ सकता।"

दूसरे दिन उसने सुना कि आज हरिराम के घर की तालाशी ली जा रही है। उसकी प्रसन्नता एक बार पुनः कुछ धूमिल हो उठी। उसने सोचा कि यदि हरिराम के गँडासे को देख कर पुलिस ने कुछ पता लगा लिया तो हरिराम अवश्य पकड़ा जायगा और उसे निश्चित रूप से फाँसी की सजा मिलेगी। ऐसी अवस्था में वह मेरा भेद भी अवश्य खोल देगा और फिर मैं दण्ड से बच नहीं सकूँगा। जब उसके नौकर ने आ कर उसे सूचित किया कि पुलिस हरिराम के घर से खाली हाथ लौट गई तो

चौधरी ने सन्तोष की साँस ली। फिर भी वह हरिराम की ओर से सर्वथा निश्चिन्त न रह सका। उसके हृदय में यह भय समाया हुआ था कि यदि कभी किसी प्रकार हरिराम की मूर्खतावश अथवा अन्य किसी कारण से भेद खुल गया तो उसे अवश्य जेल की हवा खानी पड़ेगी और उसकी अब तक की बनी हुई सारी इज़्ज़त ख़ाक में मिल जायगी। जिस दिन उसने हरिराम की मृत्यु का समाचार सुना, उस दिन उसने उसके घर जा कर बहुत शोक प्रकट किया, किन्तु वास्तव में उसे उस दिन सच्ची प्रसन्नता हुई थी। अब उसे भेद खुलने की कोई शँका नहीं रही थी, क्योंकि उसके और हरिराम के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति को वास्तविकता का ज्ञान नहीं था। उसने मन ही मन ईश्वर को करोड़ों धन्यवाद दिए, जिसने उसके सम्मान की रक्षा के लिए हरिराम को सहसा अपने पास बुला लिया।

कहते हैं कि खैर, खून, खाँसी और खुशी छिपाए नहीं छिपती। यही बात चौधरी के साथ हुई। हरिराम की जिस मृत्यु को उसने अपने लिए वरदान समझा था वह उसके लिए शाप सिद्ध हुई। हरिराम गया तो सही, किन्तु जाते समय उसके भेद को भी खोलता गया। इसका ज्ञान चौधरी को उस समय हुआ जब हरिराम की मृत्यु के पाँचवें दिन प्रातः आठ बजे के लग-भग उसने अपने घर में चार कांस्टबलों के साथ थानेदार को खड़े हुए पाया। चौधरी का रंग सहसा उड़ गया, किन्तु फिर भी सम्हल कर और साहस करके बोला—

"आइए थानेदार साहब, मेरे योग्य कोई सेवा?"

थानेदार ने तिरस्कार पूर्ण कड़े शब्दों में कहा—

"तुम्हारे नाम वारंट है।"

चौधरी के पैरों तले से जैसे ज़मीन खिसक गई। हकलाता हुआ बोला—

"मे······मे······रा·····अप·····रा·········ध ?"

उसकी बात समाप्त होने के पूर्व ही कान्स्टेबलों ने उसके हाथों में हथकड़ियाँ पहना दीं। चलते-चलते थानेदार ने कहा—

"हत्या करके पूछते हो कि मेरा अपराध क्या है ? चलो, सब अदालत में फैसला होगा।"

चौधरी के आगे बढ़ते हुए पर वहीं रुक गए। अनुनय के स्वर में बोला—

"हत्या मैंने नहीं की थानेदार साहब ! मैं ईश्वर की कसम खा कर कहता हूँ कि मैंने श्यामलाल को नहीं मारा।"

थानेदार ने क्रोध से गरज कर कहा—

"स्वयं नहीं की, किसी दूसरे से तो करवाई। मारने का षड्यन्त्र तो तूने ही रचा। श्यामलाल को रुपए देने के बहाने बुलाने का कार्य तो तूने ही किया। हत्या नहीं की, किन्तु हत्यारे से कहीं अधिक अपराधी तू ही है। तेरा सब भेद खुल चुका है। हरिराम ने स्वयं मरते समय सब कुछ सच-सच बतला दिया है। अतः तेरी झूठी बातें बना कर भेद छिपाने की चेष्टा करना बिल्कुल व्यर्थ है। अदालत में जब धनीराम हरिराम द्वारा सुनी हुई सब बातें बतलाएगा तब सब के ऊपर तेरी दुष्टता का भेद स्पष्ट हो जाएगा।"

अब चौधरी में बोलने अथवा प्रतिवाद करने का साहस नहीं रह गया। जब पुलिस को सब बातों का पता लग चुका है तब दण्ड अवश्यम्भावी है। उसे मन में हरिराम पर बहुत क्रोध आया। साला स्वयं तो मर गया और मुझे फँसा गया। ईश्वर करे कि ऐसे दुष्ट की आत्मा नर्क में जाय। मँगू चौधरी ने मन ही मन हरिराम को अनेक गालियाँ दीं। वह चुपचाप सिर नीचा किए आगे बढ़ रहा था। मार्ग में उसने देखा कि घनश्याम और धनीराम खड़े हुए परस्पर बातचीत कर रहे थे और

बीच-बीच में उसकी ओर देख कर मुस्करा देते थे। यह देख कर उसके तन-बदन में आग लग गई, किन्तु वह तीन कान्सटेबलों से घिरा हुआ था और हाथों में हथकड़ियाँ होने के कारण उस समय विवश था। अतः वह सिर को पूर्ववत् नीचे झुकाए हुए आगे बढ़ता रहा।

अदालत में ज्यों-ज्यों धनीराम चौधरी के षड्यन्त्र का भेद खोलता गया त्यों-त्यों उसके मुख का रँग सफेद पड़ता गया। उस समय वह अपने को रसातल में खड़ा हुआ समझ रहा था। जब जज ने उस से अपने पक्ष में कुछ कहने के लिए कहा तब उसने अनुभव किया कि उसकी जबान तालू से चिपकी हुई है और प्रयत्न करने पर भी वह बोल नहीं सकेगा। अतः वह चुप ही रहा। उसके भाई ने उसके लिए जिस वकील को नियुक्त किया था उसने उसके पक्ष में काफी दलीलें दीं, किन्तु घनश्याम के वकील ने उन्हें निरर्थक सिद्ध कर दिया। इस प्रकार सब के सम्मुख स्पष्ट हो गया कि धनीराम ने चौधरी के विरुद्ध जो कहा है, वह सर्वथा सत्य है। जज ने उसे बारह वर्ष का कठोर कारावास का दण्ड दिया। घनश्याम को उस समय अपने मन में कुछ शान्ति का अनुभव हुआ। लक्ष्मी के लिए भी यह समाचार सन्तोषप्रद था। उसके पति की हत्या में भाग लेने वाले दोनों व्यक्तियों को दण्ड मिल चुका था। एक को ईश्वर ने दण्ड दिया और दूसरे को अदालत ने।

यद्यपि श्यामलाल लक्ष्मी का पति था—उसकी अकाल मृत्यु ने उसकी दुनिया को सूना कर दिया था—फिर भी पति के हत्यारे को दण्ड दिलाने की उसे उतनी अधिक उत्सुकता नहीं थी, जितनी कि उसके देवर घनश्याम को थी। इसी कारण उसने लक्ष्मी के सामने प्रतिज्ञा की थी कि वह हत्यारे को फाँसी के तख्ते पर चढ़वा कर रहेगा। इस प्रतिज्ञा को सुन कर लक्ष्मी इस ओर से निश्चिन्त हो गई थी, किन्तु घनश्याम को एक दिन भी चैन नहीं मिला। हत्यारे हरिराम की ईश्वर-प्रदत्त मृत्यु का समाचार सुन कर लक्ष्मी को सन्तोष हो गया,

किन्तु उसे नहीं। वह तो उसे फाँसी के तख्ते पर झूलते हुए देख कर अपने नेत्र शीतल करना चाहता था। ईश्वर की इच्छा के आगे उसे अपनी इच्छा को दबाना पड़ा। फिर भी ईश्वर ने चौधरी को दण्ड दिला कर उसके असन्तुष्ट मन को शान्ति प्रदान की। इसका ध्यान आते ही घनश्याम का मस्तक ईश्वर के प्रति श्रद्धा से नत हो गया। घर आ कर उसने भाभी से कहा—

"देखा न भाभी, ईश्वर कितना न्यायी है। किसी न किसी प्रकार उसने मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करा ही दी। आज मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ, भाभी! बहुत ही सन्तुष्ट!!"

लक्ष्मी इस समय किसी और ही विचार में मग्न थी। ईश्वरीय न्याय की बात सुन कर उसके मन की बात को मानो प्रकट होने का मार्ग मिल गया। वह ठण्डी साँस ले कर बोली—

"ईश्वर न्यायी है देवर जी, इसमें तो कोई सन्देह नहीं है। हमें भी तो अपने पापों का फल मिल रहा है, नहीं तो उनकी अकाल मृत्यु ही क्यों होती?"

बरबस आए हुए आँसुओं को अञ्चल के छोर से पोंछ कर लक्ष्मी पुनः बोली—

"और तो क्या, अपनी तो वंश-वल्लरी ही सूख गई। मेरे पीछे कोई पानी देने वाला भी नहीं रहा।"

आज घनश्याम इतना प्रसन्न था कि पहले की भाँति लक्ष्मी के दुःख से दुखित नहीं हुआ, अपितु धैर्य बँधाता हुआ बोला—

"चिन्ता न करो, भाभी! ईश्वर ने चाहा तो अब की बार तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूरी होगी।"

लक्ष्मी ने अविश्वास से देवर की ओर एक बार देखा और चुप हो रही ।

× × ×

पिता की मृत्यु का समाचार पा कर विद्या और पूर्ण भी आए। विद्या माँ से लिपट कर खूब रोई । पूर्ण ने भी लोक दिखावा करने के लिए शब्दों द्वारा काफी दुःख प्रकट किया, किन्तु उसके हृदय में दुःख की अपेक्षा प्रसन्नता ही अधिक थी, क्योंकि श्यामलाल ने एक दिन उसी घर में विद्या को ले जाने के उसके हठ के कारण उसका जो अपमान किया था, उसकी स्मृति उसके हृदय में अभी ताजी ही थी। उसने सोचा कि अच्छा हुआ जो एक काँटा दूर हुआ। न पिता रहे न ससुर। अब मुझे उपदेश देने का साहस कोई नहीं कर सकेगा।"

रो-धो कर शान्त होने के उपरान्त लक्ष्मी ने विद्या से कुशल-क्षेम पूछी । विद्या ने कहा—

"मेरे बारे में तुम चिन्ता न किया करो, माँ ! मैं जैसे भी हूँ, ठीक ही हूँ । अब मैंने ज्यादा जलना और रोना छोड़ दिया है । अतः कुछ भी होता रहे मुझ पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।"

लक्ष्मी समझ गई कि विद्या की स्थिति पहले जैसी ही है, किन्तु वह इसमें कुछ नहीं कर सकती थी । अतः भाग्य का लेखा समझ कर चुप हो रही ।

श्यामलाल के अधिकांश कपड़े लक्ष्मी ने गरीबों को बाँट दिए थे, किन्तु एक कोट जो बिल्कुल नया ही सिला था उसने बचा लिया था । जब उसने घनश्याम से उसे पहनने के लिए कहा तो उसने अस्वीकार कर दिया । बोला:—

"भाभी, मैं वैसे ही उनके अभाव से दुखी हूँ । उनकी सूरत हमेशा मेरे सामने नाचती रहती है । उनका कोट पहन कर तो मैं नित्य प्रति

रोया करूँगा। मुझ से यह नहीं होगा, भाभी! मेरा हृदय फट जाएगा।"

लक्ष्मी जानती थी कि घनश्याम ठीक ही कह रहा है। अतः उसने उससे आग्रहपूर्वक कोट पहनने के लिए नहीं कहा। उसने सोचा कि पूर्ण को यह कोट दे दूँगी, वह अवश्य पहन लेगा। उसका विचार ठीक ही निकला। अपने पिता की सारी सम्पत्ति लुटाने के बाद पूर्ण अब निर्धनता से दिन काट रहा था। अतः कोट पा कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा कि चलो दो-तीन साल आराम से पहन लेंगे। उस कोट को पहन कर जब वह हरिपुर के बाज़ार में से निकला तो सामने से श्यामलाल का मित्र सीताराम आ रहा था। उसने उसे पहचान कर कहा—

"तुम कब आए बेटा? युग-युग जीओ। यह कोट तो शायद श्याम-लाल भैय्या का है?"

पूर्ण को इस प्रकार के प्रश्न अच्छे नहीं लगे। निर्धन हो जाने पर भी उसका पुराना दम्भ और पाखण्ड अभी नहीं छूटा था। बड़ों का मान करना तो उसने सीखा ही नहीं था। सीताराम के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने उसी दम्भपूर्ण स्वर में कहा—

"जी हाँ, यह कोट मेरे श्वसुर का ही है। उनके मरने से मुझे इतना लाभ तो हुआ कि कोट पहनने को मिला।"

उसके ये शब्द सीताराम को बहुत बुरे लगे। उसने घृणा से मुँह फेर लिया और आगे निकल गया। शनैः-शनैः सबके पास होती हुई यह बात पड़ोसी औरतों के द्वारा लक्ष्मी को भी ज्ञात हो गई। उसे अपने जामाता की नीचता पर बड़ा दुःख हुआ, किन्तु बाहर से उसने ऐसा प्रकट किया मानो कोई बात ही न हो।

दस दिन रह कर विद्या और पूर्णचन्द्र चले गए। विद्या अपनी माता

को धैर्य देने के लिए कुछ दिन और रहना चाहती थी, किन्तु पूर्णा के न मानने पर वह चुपचाप चली गई। श्यामलाल की बहिन परमेश्वरी, जो विद्या के आने के दूसरे दिन ही आ गई थी, लक्ष्मी के पास ही रही। उसके पति भी जानते थे कि लक्ष्मी के पास इन दिनों किसी के रहने की अत्यन्त आवश्यकता है। अतः उन्होंने सहर्ष परमेश्वरी को वहाँ रहने की अनुमति दी थी।

ग्यारह

वंश-वल्लरी के अँकुरित होने की जिस आशा ने लक्ष्मी को पति की मृत्यु के उपरान्त जीवित रखा, वह भी अन्त में मिथ्या सिद्ध हुई। उसने पुत्र को नहीं, अपितु एक कन्या को जन्म दिया। कन्याएँ तो पहले भी तीन-तीन थीं, किन्तु कन्याओं से किसका वंश चला है? उन सबको तो एक न एक दिन अपने घर जाना ही होगा। फिर श्यामलाल के घर में तो कोई दिया जलाने वाला भी न रहेगा। इन्हीं सब विचारों ने लक्ष्मी के घायल हृदय को और भी छलनी कर दिया था। यद्यपि उस नन्हीं बच्ची ने किसी का कुछ भी नहीं बिगाड़ा था, तथापि लक्ष्मी की आँखों में वह काँटे की तरह खटकती थी। इसका कारण था पुराने ज़माने के मिथ्या सँस्कारों का होना, जिन्होंने उसके हृदय में यह भावना उत्पन्न कर दी थी कि यह बालिका अपने पिता की बलि ले कर संसार में आई है।

लक्ष्मी से भी अधिक श्यामलाल की बहिन परमेश्वरी को कन्या के होने का दुःख था। उसका भाई श्यामलाल उससे सब भाइयों से अधिक स्नेह करता था। अत: परमेश्वरी की हार्दिक इच्छा थी कि उसका वंशज अवश्य उत्पन्न हो। कन्या ने उत्पन्न हो कर उसकी सब आशाओं पर पानी फेर दिया। परमेश्वरी को इस घटना से इतना अधिक दुःख हुआ कि वह प्राय: सारा दिन लक्ष्मी की चारपाई के निकट बैठ कर रोती रहती थी। उसकी यह अवस्था देख कर लक्ष्मी भी आश्चर्य-चकित रह गई और उसे समझाते हुए बोली—

"इस प्रकार रोने-धोने से क्या लाभ है, बीबी जी? रोना तो तब का था जब वे मरे। अब किस बात का रोना? ईश्वर को जब यही मँजूर है कि हमारे यहाँ पुत्र न हो तो रोने से थोड़े ही हो जाएगा।"

लक्ष्मी के इस समझाने का परमेश्वरी पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसका रोना-धोना उसी प्रकार चलता रहा।

लक्ष्मी की छोटी लड़कियाँ सीता और अहिल्या अभी बच्ची थीं, किन्तु राधा काफी समझदार हो चुकी थी। वह जानती थी कि नन्ही-सी बहिन ने आ कर दुखी माँ और बूआ को और भी दुखी कर दिया है। अतः उसे भी उस बालिका से विरक्ति हो गई। सीता और अहिल्या उसे खिलाती थीं किन्तु राधा ने उसे एक बार भी गोद में नहीं लिया। सम्भवतः नन्हीं बच्ची भी समझ गई कि जिस घर में वह आई है, उस घर के प्राणी उससे किसी प्रकार का ममत्व नहीं रखते। अतः तीन दिन तक सबको रुला कर और दुःख दे कर चौथे दिन सहसा वह चल बसी। उसकी मृत्यु के दूसरे दिन से परमेश्वरी की भूख जो तीन-चार दिन से मर चुकी थी, शनैः-शनैः प्रकृतिस्थ होने लगी।

बालिका तो जैसे आई थी वैसे ही लौट गई, किन्तु लक्ष्मी ने जो उस दिन से चारपाई पकड़ी तो फिर न उठ सकी। एक तो पति-वियोग ने पहले ही अधमरा किया हुआ था, ऊपर से प्रसव के कारण उत्पन्न हुई क्षीणता ने उसका सारा स्वास्थ्य छीन लिया। तीसरा यह दुःख भी कुछ कम नहीं था कि पति के बदले में उत्पन्न हुई सन्तान लड़का न हो कर लड़की हुई। इस प्रकार उसके जीवन की सब आशाओं का एकबारगी ही अन्त हो गया। ऐसे में भूख का न रह जाना एक स्वाभाविक बात थी। लाख प्रयत्न करने पर भी वह दो कौर से अधिक नहीं खा पाती थी। जब तक परमेश्वरी उसके पास रही तब तक किसी प्रकार कह-सुन कर थोड़ा-बहुत भाभी को खिलाती रही। उसके ससुराल चले जाने के उपरान्त कोई इस विषय में कहने-सुनने वाला भी न रहा। इन

सब तथ्यों का परिणाम अन्ततः यह हुआ कि लक्ष्मी सदा के लिए रोगी बन गईं।

घनश्याम भाभी की यह अवस्था देख कर बहुत चिन्तित रहता था। हरिपुर के सबसे बड़े डाक्टर शर्मा को उसने लक्ष्मी को दिखाया। दवाई चलती रही, किन्तु लाभ कोई विशेष नहीं हो रहा था। वैसे तो लक्ष्मी से बड़ी और भी दो भाभियाँ जीवित थीं, किन्तु घनश्याम का सच्चा स्नेह केवल लक्ष्मी भाभी से था। वास्तव में प्रारम्भ से ही उसे जो स्नेह लक्ष्मी से मिला था वह और किसी से नहीं। उसके विचार भी लक्ष्मी से प्रायः मिलते थे। यही कारण था कि भाई की मृत्यु के बाद और उससे पहले जब भी कोई पारिवारिक समस्या उसके सामने आती थी तब वह लक्ष्मी भाभी की सलाह अवश्य ले लेता था। वह उसका माँ के समान आदर करता था और लक्ष्मी भी उसे पुत्र के समान मानती थी। इसी कारण उसे लक्ष्मी की बीमारी की अत्यधिक चिन्ता थी। उसकी पत्नी भी पति की भाँति लक्ष्मी को सास के समान मानती थी। उसकी बीमारी में वह घण्टों बैठ कर उसकी सेवा करती रहती थी। लक्ष्मी लाख मना करती थी, किन्तु वह वहाँ से टलने का नाम न लेती थी। देवर और देवरानी के लिए लक्ष्मी के हृदय से सदैव आशीर्वाद के मंगलमय वचन निकलते रहते थे।

एक दिन प्रातःकाल जब घनश्याम लक्ष्मी की बीमारी का हाल जानने के लिए उसके घर पहुँचा तो उसने भाभी के मुख पर उत्साह की एक विशेष चमक देखी। जब से श्यामलाल भैया मरे थे तब से ले कर अब तक उसने कभी भाभी के मुख पर वैसी प्रसन्नता की रेखा न देखी थी। यहाँ तक कि जब चौधरी को कारावास का दण्ड मिला था तब भी उसने लक्ष्मी को इस प्रकार की मुद्रा-सहित नहीं देखा था। अतः आज के इस महान् परिवर्तन पर उसे काफी आश्चर्य हुआ। तभी उसे ख्याल आया कि हो न हो यह डाक्टर शर्मा की दवाई का परिणाम है। इतने दिनों

बाद आखिर दवाई ने अपना प्रभाव दिखा ही दिया। भाभी के मुख पर झलकने वाली यह प्रसन्नता अवश्य ही उनकी आरोग्यता की पूर्व सूचिका है। अतः वह भी प्रसन्न चित्त हो कर उत्साहपूर्ण शब्दों में बोला—

"क्यों भाभी आज तबियत ठीक है न ?"

लक्ष्मी शायद घनश्याम की प्रतीक्षा में ही बैठी थी। वह उसके प्रश्न का उत्तर न दे कर पास बिछी हुई एक चारपाई की ओर संकेत करती हुई बोली—

"बैठो देवर जी, तुम्हारी बड़ी उम्र हो। अभी-अभी मैं तुम्हारी ही याद कर रही थी। यहाँ बैठ जाओ मेरे सामने। मुझे तुमसे एक ज़रूरी बात करनी है।"

घनश्याम ने तुरन्त चारपाई पर बैठ कर भाभी की आज्ञा का पालन किया। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर आज ऐसी कौन सी ज़रूरी बात भाभी मुझ से करना चाहेंगी जिसके कारण उनकी चिरकाल से चली आ रही उदासी भी उनका साथ छोड़ कर चली गई है। वह एकाएक कुछ विचार न कर सका और प्रश्न और विस्मय की साकार प्रतिमा बन कर बैठा रहा।

लक्ष्मी की चारपाई रसोई के बिल्कुल साथ वाले दालान में बिछी हुई थी और उससे कुछ दूर हट कर वह चारपाई थी जिस पर घनश्याम बैठा हुआ था। राधा उस समय रसोई में चूल्हे पर दूध गर्म कर रही थी। माँ और चाचा की बातें उसे स्पष्ट सुनाई दे रही थीं। माँ के मुख से यह सुन कर कि वे चाचा जी से कुछ आवश्यक बात करना चाहती हैं, उसके भी कान खड़े हो गए। बड़ी बहन विद्या के ससुराल चले जाने पर उस समय घर की बड़ी लड़की वही थी और घर की प्रायः सभी बातों का उसे ज्ञान था। इसी कारण माँ की बात सुनने की उसकी प्रबल इच्छा हो गई, किन्तु उसकी वह इच्छा पूर्ण न हो सकी। बात

कहने से पूर्व लक्ष्मी ने दूध के सामने बैठी हुई राधा पर एक दृष्टि डाली और उससे कहा—

"राधा बेटी, दूध उतार दो। पीछे गर्म हो जाएगा। इस समय ऊपर कमरे में जा कर सीता और अहिल्या को उठाओ, बिस्तर वगैरा लपेटो और कुछ देर वहीं रहो। ठहर कर नीचे आना।"

राधा मन में कुढ़ कर रह गई। वह समझ गई कि वह माँ की बात न सुन ले, इसीलिए उसे ऊपर भेजा जा रहा है। प्रायः जिस बात को सुनने के लिए माता-पिता बच्चों को रोकना चाहते हैं उसी को जानने की उनकी इच्छा प्रबल होती जाती है। यही बात राधा के साथ भी हुई। उसका बस चलता तो वह अवश्य वह बात सुन कर रहती, किन्तु माँ की आज्ञा को भी तो वह नहीं टाल सकती थी। अतः उसने मन मार कर दूध को चूल्हे से नीचे उतारा और चूल्हे की लकड़ियाँ बुझा कर ऊपर की ओर चलने का रुख किया। उसने सीढ़ियाँ बहुत धीरे-धीरे पार कीं। शायद उसे आशा थी कि माँ की बात की कोई भनक उसके कानों में किसी प्रकार पड़ जाए तो वह उसी के आधार पर सारी बात का अनुमान लगा ले, किन्तु सीढ़ियाँ धीरे-धीरे समाप्त हो गईं और वह निराश भाव से ऊपर जा पहुँची।

जब लक्ष्मी को विश्वास हो गया कि राधा ऊपर जा चुकी, तब वह घनश्याम की ओर उन्मुख हो कर बोली—

"बात यह है देवर जी, कि मैं जल्दी से जल्दी राधा का विवाह कर देना चाहती हूँ। उस दिन जो लड़का तुम देखने गए थे वह कैसा है?"

घनश्याम अवाक् हो कर बोला—

"भाभी, अभी ऐसी क्या जल्दी है? पहले ठीक तो हो जाओ। अभी कोई वह इतनी सयानी थोड़े है हुई है, फिर अभी तो भैय्या के ग़म का घाव भी नहीं सूखा।" यह कहते-कहते घनश्याम का गला भर आया।

लक्ष्मी पहले ही जानती थी कि घनश्याम उसकी जल्दबाजी का कभी समर्थन नहीं करेगा, किन्तु वह सब ऊँच-नीच विचार कर निश्चय कर चुकी थी कि राधा का विवाह इस साल अवश्य कर देगी। श्यामलाल को मरे एक वर्ष से ऊपर हो चुका था, किन्तु ऐसा लगता था जैसे अभी कल की ही बात हो। बहुत रोने के कारण लक्ष्मी के आँसू तो सूख चले थे, किन्तु यह शोक उसके हृदय में गहरा बैठ गया था। उसे अन्दर ही अन्दर अनुभव होता था कि वह तीव्र गति से काल के सम्मुख पहुँचती जा रही है। इसी कारण वह चाहती थी कि कम से कम राधा का विवाह तो अपने हाथों करती जाए। अपने मनभावों को घनश्याम के सम्मुख प्रकट करते हुए उसने उत्तर दिया—

"तुम समझते नहीं हो देवर जी कि इस घर की लड़कियाँ कितनी अभागी हैं। ससुर जी की कितनी इच्छा थी कि विद्या का विवाह अपने हाथों करें, किन्तु उनकी अकाल मृत्यु हो गई। एक वर्ष बाद विद्या का विवाह तुम्हारे भैयया को उदास और दुःखी मन से ही करना पड़ा। जो प्रसन्नता पहले हो सकती थी वह पीछे थोड़े ही हुई। राधा तो विद्या से भी अभागी है। उसके विवाह के अवसर पर तो पिता भी न रहे और सीता और अहिल्या.........उनके विवाह के समय तक शायद मैं भी न..............।"

घनश्याम और अधिक न सह सका। बीच में ही रोकता हुआ बोला—

"बस-बस भाभी, रहने भी दो। तुम तो हर समय ऐसी ही अशुभ बातें करती रहती हो। डाक्टर ने कल ही मुझ से कहा था कि तुम्हारी भाभी शीघ्र ठीक हो जाएँगी। तुम हमेशा ऐसी ही बेतुकी बातें करती रहती हो। सदा प्रसन्न रहा करो। अब तुम्हीं तो भैयया की जगह मुझे सलाह देने वाली हो। तुम भी ऐसी बातें करोगी तो फिर मैं किस की छाया में निश्चिन्त रहूँगा?"

यह कहते-कहते घनश्याम के नेत्रों में एक आशापूर्ण चमक उत्पन्न हो गई। मानो उसे यह विश्वास हो गया था कि अब भाभी निराशापूर्ण बातें कह कर उसके मन को दुःख नहीं पहुँचाएँगी। लक्ष्मी ने उस चमक को देखा, उसके मर्म को समझा, किन्तु फिर भी उसकी आकृति तथा कथन में कोई परिवर्तन नहीं आया। उसने घनश्याम को समझाते हुए कहा—

"डाक्टर-हकीमों का कोई विश्वास नहीं होता भैय्या। ये लोग तो अन्त समय तक यही कहते रहते हैं कि रोगी ठीक हो जाएगा। जब बिल्कुल ही अन्तिम घड़ी आ जाती है, तब ये कहते हैं कि अब हम कुछ नहीं कर सकते। उस समय घर वाले रोने-धोने के सिवाय और कुछ कर नहीं सकते। बस इन लोगों को अपने पैसों से मतलब है। अगर ये पहले से ही कह दें कि रोग हमारे बस का नहीं तो कौन इन्हें पूछे? अपनी जीविका डाक्टरों को रोगी की जान से अधिक प्यारी होती है, क्यों कि ....।"

घनश्याम बीच में ही टोकता हुआ बोला—

"किन्तु भाभी, डाक्टर शर्मा ऐसा नहीं है। उस दिन राधा की चाची को बुखार हुआ था। मैं उसे डाक्टर शर्मा के पास ले गया। उसने देख कर बतलाया कि दवाई की आवश्यकता नहीं है। अत्यधिक परिश्रम करने से बुखार चढ़ गया है। कुछ दिन आराम करने से ठीक हो जाएगा। सो ऐसा ही हुआ, और कोई डाक्टर होता तो जरूर दवाई दे कर रुपए सीधे करता।"

लक्ष्मी ने शान्तिपूर्वक सारी बात सुनने के बाद उत्तर दिया—

"मैंने डाक्टर शर्मा पर कोई आक्षेप नहीं किया, देवर जी! मैंने तो प्रसँगवश डाक्टरों की बात कही थी। मैं तो केवल इतना ही चाहती हूँ कि तुम राधा के विवाह का प्रबन्ध अत्यन्त शीघ्र कर दो। यह मेरी

प्रबल इच्छा है। तुमने सदा ही मेरी आज्ञा का पालन किया है। इस बार भी जो मैं कहूँ सिर झुका कर स्वीकार कर लो।"

अबकी बार लक्ष्मी ने जान-बूझ कर अपनी बीमारी को बात को बीच में नहीं आने दिया। वह समझ गई थी कि बीमारी के विषय में निराशापूर्ण बातें घनश्याम को अच्छी नहीं लग रहीं और उस पर तर्क करने से राधा के विवाह की बात बीच में ही रह जाएगी। इसी कारण लक्ष्मी की उपर्युक्त बात सुन कर घनश्याम ने भी कोई विरोध नहीं किया, अपितु वह मुस्करा कर बोला—

"क्यों नहीं भाभी, तुम मेरी माँ हो। यदि तुम्हारी आज्ञा नहीं मानूँगा तो और किस की मानूँगा। यदि तुम्हारी इतनी प्रबल इच्छा है कि राधा का विवाह शीघ्र हो जाए तो मैं भी तुम्हारी आज्ञा के अनुसार शीघ्र ही इस कार्य को सम्पन्न कर दूँगा, किन्तु पहले यह वचन दो कि अब से मरने-वरने की बातें कभी नहीं करोगी।"

देवर के इस स्नेहपूर्ण आग्रह पर लक्ष्मी के फीके मुख पर भी एक क्षण के लिए मुस्कराहट आ गई और वह बोली—

"वचन देती हूँ कि यदि मैं समय से पहले मरने का नाम लूँ तो मेरी आत्मा नर्क में निवास करे।"

इसके बाद घनश्याम चला गया और कुछ देर बाद उसकी पत्नी लक्ष्मी के पास आ गई और उसके सिर में तेल की मालिश करती रही। उसका नाम लीला था। कुछ देर तक लीला शान्त-भाव से जेठानी की मालिश करती रही, फिर सहसा उसके मन में एक विचार आया। वह बोली—

"क्यों जीजी, आज राधा नहीं दिखाई देती। सीता और अहिल्या भी नज़र नहीं आ रहीं। कहाँ गई हैं सब?"

अभी तक लक्ष्मी अपने विचारों में इतनी मग्न थी कि उसे याद

ही नहीं रहा था कि उसने राधा को ऊपर भेजा हुआ है। लीला की बात सुन कर वह चौंक कर बोली—

"अरे राधा को तो मैंने ऊपर भेजा था, सीता और अहिल्या को उठाने के लिए। वह तो स्वयं भी वहीं सो गई मालूम होती है। जरा ऊपर जा कर उन तीनों को बुला कर लाना तो बहू ! सारा काम पड़ा हुआ है, कुछ चिन्ता ही नहीं है। राधा तेरह वर्ष की होने को आई, किन्तु बिल्कुल बच्ची बनी रहती है। न जाने अगले घर जा कर कैसे निभेगी।"

लीला ने उठते हुए कहा—

"काम की ऐसी कौन-सी बात है, जीजी ! लाओ मैं किए देती हूँ। अभी तो राधा के बेफिक्री के दिन हैं। विवाह के बाद जब सिर पर पड़ती है तो सभी कर लेती हैं। तुम उस पर व्यर्थ नाराज़ न हुआ करो। लाओ कौन-सा काम करना है मुझे बताओ। मैं अभी किए देती हूँ।" यह कह कर लीला ने प्रश्न सूचक दृष्टि से जेठानी की ओर देखा। उसे आशा थी कि लक्ष्मी जीजी अभी उसे काम बताएँगी और वह शीघ्रतापूर्वक समाप्त करके उन्हें प्रसन्न कर सकेगी, किन्तु लक्ष्मी ने अस्वीकार करते हुए कहा—

"बहु तुम रहने दो। काम की ऐसी क्या बात है ? काम तो मैं कुन्दू से कह कर अभी करा सकती हूँ। बर्तनों और सफाई आदि का काम तो वह खुद करता ही है केवल भोजन बनाना मैंने राधा के ज़िम्मे छोड़ा है। आखिर तो उसे शीघ्र ही पराये घर जाना है। आज देवर जी से इसी बारे में मैंने बातें की हैं। अब भी यदि वह काम से जी चुरायेगी तो कैसे होगा ? आखिर सभी तो अमीर नहीं होते, सभी के घर में नौकर-चाकर नहीं होते। काम करना तो लड़की को आना ही चाहिए। जाओ तुम उसे जल्दी बुला लाओ।"

इस बार लीला चुपचाप ऊपर की ओर चल दी। उसे मालूम नहीं—

था कि घनश्याम और लक्ष्मी में किस विषय पर बातें हुई थीं। जब लक्ष्मी के मुख से उसने सुना कि राधा के विवाह की बातचीत चल रही है तो उसे प्रसन्नता ही हुई क्योंकि जिस गाँव की वह लड़की थी वहाँ दस वर्ष की आयु तक लड़की का विवाह अवश्य कर दिया जाता था। वह स्वयं दस वर्ष की आयु में ब्याही गई थी। जब उसने हरिपुर में आ कर देखा कि यहाँ सोलह वर्ष तक की लड़कियों का विवाह किया जाता है तो उसे आश्चर्य हुआ था। अपने जन्मजात सँस्कारों के कारण उसे इस पर कुछ घृणा भी हुई थी किन्तु शनैः-शनैः वह इसकी अभ्यस्त हो गई। फिर भी उसके मन में एक दबी हुई इच्छा थी कि उसके अपने परिवार की ओर कम से कम अपनी लड़कियों का विवाह दस ग्यारह वर्ष की अवस्था में हो हो जाए। उसकी बड़ी लड़की गायत्री अभी आठ वर्ष की भी नहीं हुई थी। वह कई बार पति से उसके लिए लड़का देखने के लिए कह चुकी थी, किन्तु घनश्याम ने उसकी इस बात को सदैव मज़ाक समझ कर टाल दिया था। लीला ने सोचा कि चलो राधा का विवाह अब हो जाएगा तो जोर दे कर वह भी गायत्री के विवाह का ढँग बैठायेगी। इन्हीं विचारों में लीन वह ऊपर जा पहुँची। छत पर उसने चारों ओर नजर दौड़ाई। वहाँ कोई न था। बरसाती में जा कर देखा तो सीता और अहिल्या अभी तक सो रही थीं। राधा एक पलँग पर अनमनी सी लेटी हुई थी। लीला ने जा कर राधा का हाथ पकड़ लिया और बोली—

"चलो बेटी, जीजी तुम्हें बुला रही हैं।"

राधा ने चाची को सामने खड़ा देखा तो एक दम उठ बैठी, नमस्ते किया, किन्तु वह नीचे चलने को राजी नहीं हुई। बोली—

"पहले मुझे ऊपर क्यों भेजा था? मैं चुपचाप अपना काम कर रही थी। किसी से कुछ कह तो नहीं रही थी। अब मैं नहीं जाती।"

लीला राधा के इस बालकों के-से हट पर मुस्करा कर बोली—

"इसमें नाराज़ होने की क्या बात है, रानी जी ? तुम्हारे विवाह की बातें क्या तुम्हारे सामने ही करने लगतीं ? क्या तुम्हें माँ और चाचा की उन बातों को सुन कर लज्जा न आती क्यों ?"

राधा ने कोई उत्तर न दिया। विवाह की बात से उसे सचमुच ही लज्जा हो आई। वह चुपचाप सीता और अहिल्या को जगाकर चाची के साथ नीचे आगई और नित्य की भाँति काम करने लगी। उसके मन का सारा विक्षोभ शान्त हो चुका था।

लक्ष्मी की आज्ञानुसार घनश्याम ने शाहदरे वाले लड़के के चाचा को पत्र लिखा तो मालूम हुआ कि लड़के की सगाई हो चुकी है और इसी महीने में उसका विवाह हो जायेगा। लक्ष्मी को इससे कुछ निराशा हुई, किन्तु घनश्याम ने उसे धैर्य बाँधते हुए कहा—

"वाह भाभी ! इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है ? केवल वही लड़का तो दुनिया भर में कुँवारा नहीं था जो तुम इस तरह निराश हो रही हो। उसको तो हमने इसलिए पत्र लिखा था कि भैया ने उसे बहुत पसन्द किया था। यदि अभी तक कुँवारा होता तो वहीं विवाह हो जाता। यदि उसकी सगाई हो चुकी तो हो जाए। राधा जैसी सुन्दर और सुशील बालिका के लिए लड़के की कमी थोड़े ही है ? अब निश्चय ही कर लिया है तो दो महीने के अन्दर विवाह करके ही रहूँगा। ज़रा देखना कि उससे भी अधिक उत्तम वर खोज निकालता हूँ कि नहीं।"

घनश्याम ने इतना कह कर भाभी की ओर गर्व और विश्वासपूर्ण दृष्टि से देखा और लक्ष्मी ने घनश्याम की ओर कृतज्ञ दृष्टि से स्नेहपूर्ण आशीर्वाद की वर्षा की।

घनश्याम ने जो कहा था वही कर दिखाया। सात दिन में ही उसने दिल्ली में एक अच्छा लड़का खोज कर राधा की सगाई पक्की कर दी।

और सगाई के एक माह बाद ही विवाह भी कर दिया। लड़के का नाम विजय चन्द्र था। देखने में अच्छा था और स्वभाव उसका अत्यन्त सरल एवं नम्र था। दफ्तर में नौकरी करता था। तीन सौ रुपया महावार आय थी। घर में वृद्ध माता-पिता थे और एक छोटी बहन थी। विवाह के अवसर पर जब लक्ष्मी ने उसे देखा तो वह अत्यन्त प्रसन्न हुई। लड़के के शील, रूप और गुणों ने उसे बहुत प्रभावित किया। उसने सोचा कि चलो धन न सही, वर तो अच्छा है। जब उसकी जेठानी (राधेश्याम की पत्नी) ने नाक तनिक संकुचित करके उससे कहा लड़का तो अच्छा है, पर बहू, तुमने घर-बार अच्छा नहीं देखा। न लड़के की कोई जायदाद है, न कुछ और जमा-पूँजी है। तीन सौ रुपल्लो में क्या-क्या करेगा? बूढ़े माँ-बाप का पेट भरेगा, बहन का विवाह करेगा या राधा को सुखी रखेगा? तो लक्ष्मी ने अत्यन्त शान्ति से उत्तर दिया—

"जेठानी जी, घर में से वर नहीं निकल सकता पर वर में से घर निकल सकता है। मुझे धन का लालच नहीं है। मेरी राधा सुखी रहे बस यही मुझे चाहिए। सुख धन से थोड़े ही होता है। वह तो भाग्य से होता है। नहीं तो क्या मेरी विद्या सुखी न रहती! फिर राधा के पिता जी की खास इच्छा थी कि अपनी बाकी लड़कियों का विवाह गरीब घरों में करें।"

यह उत्तर सुन कर जेठानी चुप हो रही। ग़रीब होने के कारण लड़के वालों की तरफ से राधा को अधिक जेवर नहीं चढ़ा, किन्तु लक्ष्मी ने उस कमी को अपने पास से पूरा कर दिया। उसे पूर्ण विश्वास हो चुका था कि यह विवाह उसके हाथों अन्तिम है। अतः उसने खूब मन खोल कर खर्च किया। रुपया-पैसे की कमी थी ही नहीं। केवल सीता और अहिल्या का विवाह करना था। जितना धन श्यामलाल अपने पीछे छोड़ गया था, उसमें दस बार दोनों लड़कियों के विवाह हो सकते थे।

यद्यपि लक्ष्मी इतनी बीमार थी कि डाक्टर ने उसे उठने के लिए

मना किया था किन्तु राधा के विवाह में उसने किसी की एक न सुनी और उत्साहपूर्वक स्वयं काम-काज करती रही। जब घनश्याम ने बहुत मना किया तो वह बोली—

"केवल यही एक लड़की तो मेरी शेष है, भैय्या! बाकी दो तो तुम्हारी हैं। इसका विवाह तो अपने हाथों से कर लूँ, फिर जितना कहोगे उतना आराम कर लूँगी।"

घनश्याम ने याद दिलाते हुए क्षोभपूर्ण शब्दों में कहा—

"याद है न भाभी अपना बचन?"

लक्ष्मी ने कुछ चौंक कर कहा—

"अरे वह बचन! हाँ-हाँ तो मैंने मरने का नाम कहाँ लिया है?"

घनश्याम ने अस्वीकार करते हुए कहा—

"स्पष्ट नहीं कहा तो क्या हुआ? बातों से तो यही स्पष्ट हो रहा है। बस मैं समझ गया कि तुम अपने बचनों का पालन नहीं कर सकतीं।"

लक्ष्मी ने हँस कर कहा—

"अरे मुझे व्यर्थ पाप का भागी क्यों बना रहे हो? तुम्हें नहीं अच्छा लगता तो मैं कुछ भी न कहूँगी, अब तो खुश हो।"

घनश्याम चुपचाप अपना काम देखने लगा। उसने समझ लिया कि भाभी से कितना ही कहें वह राधा के विवाह के बाद ही आराम करेंगी। अतः उसने इस विषय में अधिक कहना व्यर्थ समझा।

विमला की भाँति राधा भी ससुराल चली गई। लक्ष्मी ने पहले से

अपने आपको किसी प्रकार सम्हाल लिया किन्तु ज्योंही राधा विदा हुई त्यों ही उसके आँसूओं का बाँध टूट गया। यद्यपि सीता और अहिल्या अभी शेष थीं किन्तु उसे लग रहा था कि घर सूना हो चुका है। अन्त में वह रो-धो कर शान्त हो गई। विवाह में विद्या और पूर्णचन्द भी आए थे। चार-पाँच दिन रह कर वे चले गए। अब लक्ष्मी पहले से भी अधिक अकेलेपन का अनुभव करने लगी।

बारह

कुछ तो विवाह के समय पर किए गए कठिन परिश्रम के कारण और कुछ पुत्री के विरहजन्य शोक के कारण लक्ष्मी की दशा दिनों-दिन शोचनीय हो गई। फिर भी उसे अपनी मृत्यु के विषय में कोई चिन्ता न थी क्योंकि राधा का विवाह अपने हाथों करने की उसकी इच्छा पूर्ण हो चुकी थी। शेष दो पुत्रियों के विषय में उसे घनश्याम पर पूरा विश्वास था। घनश्याम के अब तक के निष्कपट व्यवहार को देख कर भी यह कल्पना करना कि वह अपने भाई की मातृ-पितृ-विहीना पुत्रियों के साथ दुर्भाँति करेगा, सर्वथा निर्मूल था। इसी कारण सीता और अहिल्या की ओर से वह निश्चन्त थी। दुःख केवल इसी बात का था कि वह पुत्र-हीना थी। ज्यों-ज्यों मृत्यु उसके निकट आयी दिखाई दे रही थी, त्यों-त्यों यह अभाव उसे और खल रहा था। ईश्वर ने पति को छीन कर भी पुत्र का मुख न दिखाया, मुझसे बढ़ कर अभागी दुनियाँ में और कौन होगी। यही विचार रात-दिन उसके मन को घेरे रहते थे।

इन्हीं दिनों लक्ष्मी के मायके की एक सखी उससे मिलने आई। उसका नाम चमेली था और वह हरिपुर के ही पास एक गाँव में ब्याही गई थी। जब से लक्ष्मी ब्याह कर आई थी तब से केवल कई बार दोनों की मुलाकात हुई थी। विद्या के विवाह पर लक्ष्मी ने उसे आने के लिए पत्र लिखा था, किन्तु किसी कारण वश वह समय पर नहीं आ सकी और तीन दिन बाद आ कर एक-डेढ़ घण्टे के लिए मिल कर चली गई

थी। बस विवाह के बाद दोनों सखियों का यही एक मिलन हुआ था। इसके बाद श्यामलाल की मृत्यु का तार पा कर चमेली ने अपने पुत्र से एक पत्र लिखवा कर शोक प्रकट कर दिया था। जब लक्ष्मी ने घनश्याम के द्वारा राधा के विवाह के लिए उसे निमन्त्रण भेजा तब भी उसने विवशता का पत्र लिखवा भेजा, क्योंकि उन्हीं दिनों उसकी अपनी ननद का विवाह था। उस दिन सहसा अपनी प्रिय सखी को अपने घर आया देख कर लक्ष्मी को अपार प्रसन्नता हुई। यद्यपि आजकल लक्ष्मी चारपाई से उठ नहीं सकती थी, फिर भी उसने उत्साह और प्रसन्नता के वशीभूत हो कर किसी प्रकार उठ कर अपनी बाल्यकाल की सखी को गले से लगा लिया। श्यामलाल की मृत्यु के बाद चमेली पहली बार लक्ष्मी के घर आई थी। अतः दोनों गले से लग कर खूब रोईं। सीता और अहिल्या सहमी हुईं पास खड़ी इस रोदन को देख रही थीं। पाँच-छः मिनट बाद रो-धो कर दोनों शान्त हो गईं।

लक्ष्मी ने सीता से कह कर चमेली को बैठने के लिए पीढ़ा मँगवाया और स्वयं भी चारपाई पर बैठ गई। चमेली को पता लग चुका था कि लक्ष्मी बहुत बीमार है, इसी कारण वह उसे देखने के लिए आई थी। जब उसने लक्ष्मी को चारपाई पर बैठते हुए देखा तो बोली—

"बैठ मत लछमी, लेट जा। लेटे ही लेटे बात कर, नहीं तो बीमारी बढ़ जाएगी।"

बाल्यकाल की सखियाँ होने के कारण दोनों एक दूसरे को नाम ले कर बुलाती थीं और पहले जैसी बेतकल्लुफ़ी से बातें करती थीं। चमेली के आग्रह से लक्ष्मी लेट गई और दोनों में सुख-दुःख की बातें होने लगीं। श्यामलाल की मृत्यु का प्रसंग आने पर चमेली विस्मय प्रकट करती हुई बोली—

"बहन लछमी, जीजा जी तो गऊ जैसे सीधे थे। हत्यारे ने आखिर क्या सोच के उनकी जान ले ली।"

लक्ष्मी ने निराश भाव से दाँया हाथ घुमा कर कहा—

"क्या बताऊँ बहन ! सब भाग्य का लिखा होता है। भाग्य सीधा होता है तो सब कुछ हो जाता है, आदमी के सीधे होने से क्या बनता है। घनश्याम देवर का दिल्ली जाना, फिर राधा के पिता जी का चौधरी के कहने से उसके घर रुपए लेने जाना, ये सब खेल भाग्य ही तो करा रहा था, नहीं तो क्यों ऐसे बानक बनते और क्यों पीछे से दुख उठाने पड़ते।"

चमेली लक्ष्मी की बात का समर्थन करते हुए बोली—

"यह तो है ही, भाग्य के बिना तो एक छदाम भी किसी को नहीं मिलता। कहा करें न 'करम गति टारे नाहीं टरी', सो ठीक ही है। जो दुःख करम में लिखा हो वह मिल के रहता है चाहे कोई कितना ही जोर लगाले।"

लक्ष्मी ठण्डी साँस ले कर बोली—

"और तो और भगवान ने एक बेटा भी जिन्दा न रखा जो उस को देख के ही कुछ धैर्य बँधता। हमने तो कुछ गहरे ही पाप किए थे बहन। राधा के होने से पहले इतने लड़के हुए पर एक भी जिन्दा न बचा और राधा के बाद जब बालकों के बचने की कुछ आशा बँधी तो लड़का हुआ ही नहीं। उनके मरने के बाद कुछ आशा थी कि चलो पति के बदले पूत मिल जाए तो भी सब्र कर लेंगे, पर इन फूटे नसीबों में यह भी नहीं लिखा था। अब तो हम दोनों की आत्मा नर्क में ही सड़ेगी।"

कहते-कहते लक्ष्मी का गला भर आया। यह देख कर चमेली उसे धैर्य बँधाने की गर्ज से बोली—

"जी भारी मत कर लछमी। तेरे पास धन की कमी थोड़े ही है। अपने धन से एक धर्मशाला या पाठशाल खोल जाइयो फिर देखियो तेरा और जीजा जी का नाम कैसा अमर रहेगा। न हुआ बेटा तो न सही, मार गोली सुसरे को।"

चमेली की बात सुन कर लक्ष्मी का दुःख कुछ शान्त तो हुआ, किन्तु उसकी चिन्ता दूर नहीं हुई। अपनी मनोभावना को ठण्डी साँस के साथ प्रकट करती हुई बोली—

"यों तो अनाथालय में भी दान करें तो बहुत नाम हो जाता है पर बहन चमेली बेटे की बात तो और ही होती है।"

चमेली ने निश्चित भाव से उत्तर दिया —

"ये तो सब झूठे ख्याल हैं लछमी। जैसा नाम अपने नाम की पाठशाला और धर्मशाला से चलता है वैसा न और कहीं दान देने से चले, और न बेटे से। बेटे कौन सा सारे अच्छे होवें हैं। हमारे मोहल्ले में पण्डित सुखराम ने अपने इकलौते बेटे को अपने हाथ से कत्ल करके जला दिया और अपने सारे धन से एक पाठशाला खोल दी और दोनों आदमी खूब खुश हैं। जरा भी फिक्र नहीं करते कि बेटे बिना हमारा वंश कैसे चलेगा।"

इस विस्मयपूर्ण घटना को सुन कर लक्ष्मी एक क्षण के लिए अपना सारा दुःख भूल गई। विस्मयपूर्वक बोली—

"क्यों बहन, क्या बाप कसाई था जो इकलौते बेटे को मार दिया? क्या उसकी माँ का कलेजा पत्थर का है जो जवान बेटे के मरने पर भी चैन की वंशी बजा रही है?"

चमेली मानों रहस्य का उद्घाटन करते हुए बोली—

"माँ-बाप का इसमें कोई कसूर नहीं है, बेटा ही नालायक था। चोरी, ज़ारी, रण्डी-बाजी सारे गुण थे उसमें। बाप ने बहुतेरा समझाया, बहुतेरे हाथ-पाँव जोड़े पर वह अपनी करतूतों से बाज न आया। बेचारे पण्डित जी की लाख की इज़्ज़त खाक में मिला दी उस पूत ने। हार के पण्डित जी बरदाशत नहीं कर सके तो एक रात चुपचाप जा कर सोते में गला घोंट के मार डाला। माँ तो उस वक्त दूसरे कमरे में

थी। फिर भी कुछ देर में उसे मालूम तो सब हो ही गई। पण्डित जी ने उससे साफ कह दिया कि तेरी मर्जी हो तो मुझे जेल भिजवा दे, पर अपने किए पर मुझे पछतावा नहीं है। ऐसा नालायक बेटा मुझे नहीं चाहिए था। माँ बेचारी ने बेटे से तो हाथ धो ही लिया था, पति को पकड़वा कर क्या लेती। दोनों पति-पत्नियों ने बात छिपा कर चुपचाप बेटे की लाश रातों-रात में ले जा कर फूँक दी। साथ में एक-आध आदमी और ले लिया। सब को बता दिया कि लड़के को हैज़ा हो गया था और इसलिए सहसा वह मर गया। उस समय तो सबको विश्वास होगया पर बात कोई छिपी थोड़े ही रहती है। बाद में पता सबको चल गया, पर सबको उस लड़के की बदचलनी का पता था। इसलिए सब को पण्डित जी से हमदर्दी थी। सो पुलिस तक बात नहीं पहुँची।''

लक्ष्मी अत्यन्त मनोयोग से चमेली की बात सुन रही थी। एक क्षण के पश्चात् चमेली ने पुनः अपनी बात प्रारम्भ की—

"पण्डित जी ने लड़के की मृत्यु पर एक भी आँसू नहीं बहाया किन्तु माँ आखिर माँ ही थी, वह जब-तब रोती रहती थी। पण्डित जी ने उसे समझा कर कहा, बावली रोती क्यों है। वह नालायक लड़का तुझे क्या सुख देता। ले मैं अपने धन से एक बच्चों की पाठशाला खोले देता हूँ। उन बच्चों को अपने ही समझना और अपने बेटे मनिराम के बचपन को उन्हीं में ढूँढ़ना। जैसे पण्डित जी ने कहा था वैसे ही कर दिखाया। उनकी पाठशाला में हजारों बालक पढ़ते हैं। वे सब पण्डितानी और पण्डित जी को माँ-बाप मानकर उनके चरण छूते हैं। उनका आदर करते हैं। अब तो पण्डितानी को भी मनिराम याद नहीं आता। दोनों पाठशाला के बालकों में मगन हो कर रहते हैं। सारे गाँव में पण्डित जी का नाम इज़्ज़त से लिया जाता है। अब तू ही बता लछमी, उस नालायक बेटे से उनका कौन सा नाम चल जाता। उल्टे बेइज़्ज़ती होती थी। पाठशाला उनके वंश के नाम को खूब चला रही है।''

लक्ष्मी विस्मय-विमुग्ध हो कर चमेली की बात सुन रही थी। ज्यों-ज्यों सुनती जाती थी त्यों-त्यों उसका शरीर रोमांचित होता जाता था। उसके हृदय का समस्त दुःख छिन्न-भिन्न हो चुका था। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह भी अपने पति के नाम से एक पाठशाला हरिपुर में खुलवा देगी। जब इहलोक में उनकी यश-सुरभि फैलेगी तब परलोक में उनकी आत्मा कितनी सुखी होगी। इस कल्पना ने लक्ष्मी को आत्म-विभोर कर दिया। उसने कृतज्ञ दृष्टि से चमेली की ओर देख कर कहा—

"बहन तेरी बातों ने मुझे एक नया मार्ग सुझा दिया है। तेरा आना मेरे लिए वरदान सिद्ध हुआ है। मेरे पुत्र-अभावजनित दुःख को तू ने इतनी जल्दी हर लिया। मैं किन शब्दों में तेरा धन्यवाद करूँ। आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मैं शीघ्र ही देवर जी से कह कर अपने घर में पाठशाला की नींव डलवा दूँगी। फिर मैं निश्चिन्त हो कर मर सकूँगी।"

चमेली ने प्रसन्न हो कर कहा—

"मैं तो पहले ही कह रही थी। भला पैसे वाली को भी वंश चलाने का रोना! अच्छा अब मैं चलूँ, फिर आऊँगी।"

लक्ष्मी चौंक कर बोली—

"अरे बातों-बातों में यह भी ध्यान न रहा कि तुझे कुछ खिलाऊँ-पिलाऊँ तू भी क्या कहेगी। इतने दिनों में लक्ष्मी के घर आई तो पानी भी न पूछा। अरी ओ सीता! इधर आ, ज़रा बुन्दू को बुला ला।"

चमेली सीता को रोकती हुई बोली—

"ना बेटी रहने दे। लक्ष्मी बहन, मैं फिर कभी आ जाऊँगी, अब तो मुझे जाने दे। मैं तो दो-तीन घन्टे तक लौटने की कह आई थी।"

लक्ष्मी ने उलाहने भरे स्वर में कहा—

"कैसी बात करती है चमेली ! इतने दिन में आई सो भी ठहरेगी नहीं । मैं तो आज नहीं जाने दूँगी । कल प्रातःकाल बेशक चली जाना । तुझे मेरी कसम है जो तू जाए ।"

चमेली मुस्करा कर बोली—

"यह कसमें खिलाने की बचपन की तेरी आदत अभी गई नहीं लछमी । ले मैं ठहर जाऊँगी । ऐसी कौन सी भारी कमेर घर जा कर मुझे करनी है जो तुझे नाराज करके जाऊँगी, पर फिर तू भी हमारे घर जरूर आइयो ।"

लक्ष्मी ने मुस्करा कर कहा—

"यदि जीवित रही तो अवश्य एक बार तेरा घर देखने आऊँगी ।"

इतने में सीता बुन्दू के साथ लौट आई । लक्ष्मी ने बुन्दू से मिठाई मँगवा कर चमेली को खिलाई । सायँकाल होने पर खाने से निवृत्त होने के उपरान्त दोनों सखियाँ पास-पास चारपाई बिछा कर लेट गई । दोनों में बहुत सी बातें होती रहीं । प्रातःकाल चमेली चली गई और जाते समय लक्ष्मी से प्रण कराती गई कि वह अवश्य उसके घर एक बार आएगी ।

मौका पाकर लक्ष्मी ने घनश्याम से अपनी बात कह दी । घनश्याम को भी वंश-संचालन की यह युक्ति बहुत पसन्द आई । बोला—

"भाभी यह तुमने बहुत अच्छी युक्ति सोच निकाली है । इससे भैय्या का नाम सदा के लिए अमर हो जाएगा ।"

लक्ष्मी प्रसन्न हो कर बोली—

"यह युक्ति मेरी सोची हुई नहीं है, अपितु मेरी सखी चमेली ने मुझे यह सुझाई है। अब तुम शीघ्र ही घेर को तुड़वा कर पाठशाला के लिए एक भवन की नींव डलवा दो।"

घनश्याम ने उत्साह से उत्तर दिया—

"बेशक भाभी शुभ-कार्य में देर नहीं होनी चाहिए। मैं आज ही इस विषय में ठेकेदार से बात करूँगा। दो सप्ताह के अन्दर-अन्दर काम प्रारम्भ हो जाएगा।"

घनश्याम ने शीघ्र ही प्रयत्न करके पाठशाला की चिनाई प्रारम्भ करा दी, किन्तु लक्ष्मी उस शुभ-कार्य को सम्पन्न होते न देख सकी। उसकी बीमारी बढ़ते-बढ़ते एक दिन इतनी बढ़ गई कि उसके पाँवों में शौचादि के लिए उठने की शक्ति भी न रही। डाक्टर शर्मा ने भी कह दिया कि अब रोगिनी के बचने की कोई आशा नहीं है। उसके अन्तिम दिन आ चुके हैं। घनश्याम और उसकी पत्नी अब प्रायः सारा दिन ही लक्ष्मी के घर रहते थे। एक दिन लक्ष्मी का मन बुरी तरह घबराने लगा। उसने घनश्याम को संकेत से पास बुला कर कहा—

"जरा अपनी बड़ी भाभियों को बुला लाओ, अब मैं कुछ-एक घन्टों की मेहमान हूँ।"

घनश्याम उमड़ते हुए आँसुओं को बरबस रोक कर आज्ञा पालन करने चला गया। कुछ देर बाद मनिराम और राधेश्याम की बहुएँ भी वहाँ आ गईं। राधा और विद्या के घर शीघ्र आने के लिए तार भेज दिया गया। जेठानियों को आया जान कर लक्ष्मी ने धीरे से आँखें खोलीं और अत्यन्त धीमे स्वर से कहा—

"अब मैं चली, जो कुछ अपराध मुझ से अब तक हुए हों, उनके लिए क्षमा करना।"

मनिराम की बहू भरे हुए गले से बोली—

"तुम से क्या अपराध होने थे। बहुत अपराधी तो हम हैं जो अभी तक जी रहे हैं। तुम तो हम से छोटी हो। मौत तो हमें आनी चाहिए थी, पर ईश्वर के ढंग ही निराले हैं।"

यह बातें सुन कर राधेश्याम की पत्नी और घनश्याम की पत्नी की आँखें भी सजल हो गईं। घनश्याम तो फूट-फूट कर रोने लगा। लक्ष्मी ने उसे अपने पास बुला कर धीरे से कहा—

"रोओ मत भैय्या। मेरे जीने की अब कौन सी आवश्यकता थी। ईश्वर ने मेरे ऊपर इतनी कृपा की है तो अब तुम रो कर मुझे दुःखी मत करो, मुझे सुख से मरने दो। तुमने सदा ही मेरी और अपने भैय्या की आज्ञाओं का पालन किया है। तुम्हारा ऋण हम न उतार सकेंगे। ईश्वर तुम्हें बाल-बच्चों समेत सदा सुखी रखे।"

कुछ रुककर वह पुनः बोली—

"वह पाठशाला बनवाना मत भूलना। उस का नाम अपने भैय्या के नाम पर रखना।"

घनश्याम का गला अश्रुओं से रुँधा था। अतः उसने मुख से कुछ न कहा, केवल सिर हिला कर स्वीकृति दे दी। लक्ष्मी ने पास खड़ी हुई सीता और अहिल्या को देखा। दोनों सहमी दृष्टि से माँ की ओर निहार रही थीं। लक्ष्मी ने उन्हें पास बुलाया। दोनों दौड़ कर पास आ गईं। लक्ष्मी ने दोनों के दाँए हाथ पकड़ कर घनश्याम के हाथों में दे कर कहा—

"अब ये दोनों तुम्हारे भरोसे हैं भैय्या!"

इस बार सभी उपस्थित व्यक्ति रोने लगे। सब को रोते देख सीता और अहिल्या भी रो पड़ीं। घनश्याम ने रोते हुए कहा—

"और हम लोगों को किस के भरोसे छोड़ कर जा रही हो भाभी !"

लक्ष्मी की वाणी अब तक अशक्त हो चुकी थी। फिर भी उसने हाथ के संकेत से अपनी जेठानियों की ओर संकेत करके घनश्याम की बात का उत्तर दे दिया। इतने में उसका मुख खुला। घनश्याम ने लपक कर उसमें तुलसी का पत्ता और थोड़ा सा गंगा जल डाल दिया और वह बन्द हो गया। इसके बाद लक्ष्मी को पृथ्वी पर उतार दिया गया। पृथ्वी पर आते ही उसकी आँखें फट गईं और उसने दम तोड़ दिया। घर भर में कोहराम मच गया। मोहल्ले के बहुत से लोग एकत्रित हो गए। सीता और अहिल्या को वहाँ से हटा कर पास के घर में भेज दिया गया।

राधा और विद्या के आने के पूर्व लाश को जलाना घनश्याम ने अनुचित समझा। प्रातःकाल होते ही दोनों आ पहुँचीं और माँ की लाश से लिपट कर फूट-फूट कर रुदन करने लगीं। मोहल्ले की औरतों ने बड़ी कठिनता से उन्हें हटाया। घनश्याम ने विधिपूर्वक दाह-संस्कार का कार्य सम्पन्न किया, किन्तु उसके हृदय में जैसे हाहाकार मचा हुआ था, किन्तु भाईयों में केवल वही शेष रहा था। अतः सब कार्य उसी को करने थे, इसलिए किसी प्रकार उसने अपने आप को सम्हाल लिया।

× × ×

आज घनश्याम जीवित नहीं है। सीता, अहिल्या और घनश्याम की दोनों लड़कियों के विवाह हो चुके हैं। घनश्याम के भी अन्त तक कोई लड़का नहीं हुआ, किन्तु उसने अपने वचन का पालन पूर्णतः किया। श्यामलाल की वंश-वल्लरी 'श्यामा पाठशाला' आज भी हरिपुर में वर्तमान है। उसके नाम के नीचे मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है— "अपने भाई श्यामलाल की स्मृति में श्री घनश्याम द्वारा निर्मित।" इस प्रकार दोनों भाईयों का नाम अमर हो चुका है। प्रतिवर्ष इस पाठशाला में

श्यामलाल, लक्ष्मी और घनश्याम के मृत्यु-दिवस पर शोक-सभा होती है, नन्हें बालक उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं, और उन दिनों में पढ़ाई नहीं होती है।